वन्य कुसुम
डॉ0 संगीता
डॉ0 अनीता किरण

वन्य कुसुम

रचनाकार
डॉ0 संगीता
डॉ0 अनीता किरण

प्रकाशक :
उत्पल पब्लिकेशन्स
दिल्ली–92 फोन 011–22464458
Email: utpalpublications@gmail.com

'वन्य कुसुम ' काव्य–संग्रह
रचनाकार : डॉ0 संगीता एवं डॉ0 अनीता किरण
प्रकाशन वर्ष : अप्रैल 2017
संस्करण : प्रथम

ISBN No. 81-85217-40-8

मूल्य : 450/–

प्रकाशक :
उत्पल पब्लिकेशन्स
दिल्ली–92 फोन : 011–22464458
E-mail: utpalpublications@gmail.com

अक्षर एवं चित्र संयोजन : शोभा क्रियेशन्स, जम्मू।
मो0 9419104787, 0191–2438676

मुद्रण :
जॉफरी एण्ड बेल पब्लिशर्स, प्रिंटर्स
बी–30 चन्द्रगुप्त कॉम्पलेक्स
सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली–92
Phone: 011-22047667
Email: jeoffryandbellpublishers@gmail.com

समर्पण

श्रीगुरु पद नख मनि गन ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।

दयानिधि सतगुरु के श्री चरणों में ...

Foreword

''Vanya Kusum' is a collection of Hindi poems composed by two young scholars of Jammu. Rarely do two or more scholars jointly publish their poetical compositions. Their close association appears to have fostered in them many subtler values of human relationship that have found tongue in their poetry.

These poems are reflective and not descriptive. The idiom is simple but ideas are profound. In the words of Urdu poet Mirza Ghalib, a man in his individuality is a tumultuous ocean of ideas. Ideas have been provoked but not exploited leaving that task to the reader and rightly so. Nevertheless, the turmoil inside may be noiseless but not without commotion.

There is no dearth of innovation in the flight of human imagination. Many a times our imagination becomes impersonal as it floats in the etheral world. We get detached from the body and its visible bonds. These are eternal moments highly conducive to giving tongue to what floats in the broad expanse of imagination.

I find these two authors and artists have the faculty of successfully breaking away from the bonds of regulated expresion. A question is avidly asked and benignly left unanswered. This manifests the faculty of creativity.

I feel, one day this compilation could become a model for younger artists and poets to break new paths and open up vistas of new imagination. I can mark one significant characteristic of these poems. They suggest that inner peace and sublimity are achieveable

even amidst torments and turmoils. Human mind has great resilience. We are gifted with the capacity of maintaining balance and equilibrium even while floating over the furious ocean of time. Equilibrium is the reward of introspection which the Buddha emphasized as the elixir of life. Equilibrium purifies the soul and poetry is the reward of this equilibrium. It fosters humanistic relationship.

Dated : 09-10-2016

Dr. K. N. Pandita
Former Director,
Centre for Central Asian Studies,
University of Kashmir, Srinagar.

प्रस्तुत काव्य एवं चित्र संकलन की प्रस्तावना (Foreword) के लेखक प्रो० (डा०) के० एन० पंडिता को राष्ट्र भावना निर्माण हेतु उनके सक्रिय सहयोग और समसामयिक सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर स्वस्थ चिन्तन और स्तम्भ लेखों के द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति के लिए भारत सरकार ने इस वर्ष पद्मश्री से सम्मानित किया है ।
हमारी ओर से उन्हें हार्दिक बधाई ।

– प्रकाशक

आमुख

"आनन्द का प्रसार करने की इच्छा से बढ़कर
न तो कोई प्रसाधन है और ना ही कोई व्यवहार।"

– इमर्सन

साधारण से शब्दों में इमर्सन ने कितनी गूढ़ और सार्थक बात कही है, परन्तु बात वहीं पर रुक जाती है कि आनन्द क्या है ? आज के दौर में जब हम क्षणों को जीने की बात करते हैं तो स्पष्ट है कि हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। शायद् हमारे पास न समय है और ना ही धैर्य! पर क्या आनन्द की विराटता को एक क्षण में समेटा जा सकता है ? शायद् नहीं क्योंकि 'क्षण' छलावा हो सकता है, कल्पना मात्र हो सकता है या फिर उथला सा सुख हो सकता है। एक क्षण की अनुभूति स्थायी नहीं हो सकती और जो स्थायी नहीं वह विराट नहीं हो सकता है और जो विराट नहीं वह शाश्वत नहीं हो सकता और जो शाश्वत नहीं वह 'आनन्द' कैसे हो सकता है !!!

हर प्रकार से उन्नत और समृद्ध होने पर भी आज हम आश्वस्त नहीं हैं, सन्तुष्ट नहीं हैं। एक विचित्र सा सूनापन और खोखलापन हमारा पीछा करता रहता है और भीतर कुछ न कुछ अन्दोलित होता रहता है। अन्तर में हो रही भावों की यह उथल–पुथल अनायास ही कभी शब्दों का निर्झर बनकर बहने का मार्ग ढूँढती है और तब अभिव्यक्ति कल्पना को साकार कर देती है। अभिव्यक्ति न होती तो यह जीवन मूक होकर रह जाता – एक अनबूझा रहस्य। तब कौन जान पाता इस विराट रचना और इसके रचियता को ! सब कैद होकर रह जाता और पहचान ही खो जाती।

जीवन का यथार्थ ही हमारी अभिव्यक्ति का आधार बनता है । परन्तु यथार्थ के पर्दे के पीछे भी एक दुनिया है जो हमारी तीव्र अनुभूति की प्रतीक्षा में है, जिससे हमने मुँह तो मोड़ लिया है परन्तु जिसके होने से हम इन्कार नहीं कर सकते। सौन्दर्य वास्तव में वहीं छिपा है।

हमने उस अनुपम सौन्दर्य का अनुभव उन महान विभूतियों के सान्निध्य में किया है जो हमारे लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं– निःस्वार्थ स्नेह से पोषण देने वाले माता–पिता उस सौन्दर्य का साकार रूप रहे हैं, पिता तुल्य गुरुवर डॉ0 रमेशकुमार शर्मा के सुदृढ़ एवं

स्नेहहिल व्यक्तित्व में उस सौन्दर्य की ही झलक मिलती रही है और हमारी आत्मीय, हमारी दीदी डॉ0 बिमला मुन्शी जो निरन्तर अपने ममत्व भरे स्नेह का उपहार देती रहीं, उनकी ज़िन्दादिली आज भी बाधाओं को रौंधकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

शाश्वत सौन्दर्य का परिचय देने वाले अन्तर के आनन्द को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का हमने एक विनम्र प्रयास किया है। अक्षर संयोजन से लेकर प्रकाशन तक का कार्य अपने कुशल तथा समर्थ हाथों में लेने वाले हमारे अग्रज राजेन्दर भाई साहब के सहयोग के बिना अपनी अनुभूतियों को एक पुस्तक का रूप देना हमारे लिये सम्भव नहीं था, आभार शब्द उनके अनुपम स्नेह के समक्ष बहुत छोटा है।

आज हम कोमल भावनाओं की मीठी छुअन के अभाव में जीवन जी रहे हैं और त्रस्त हैं। सहज कोमल भावों द्वारा इस अभाव को भरने और जीवन को त्रासदी से मुक्त करने का ही प्रयास है यह! ध्येय एक ही है – इस अभिव्यक्ति द्वारा आनन्द का ही प्रसार हो! काव्य एवं चित्रों के माध्यम से बन्धुत्व की अनुभूति को साकार करने का यह छोटा सा प्रयास पाठकों को आनन्द और सुख देने वाला हो! अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता सुधी पाठकों पर ...

संगीता
अनीता किरण

अनुक्रम

खण्ड एक : काव्य सुमन

खण्ड दो : भाव चित्र

– o –

खण्ड एक

काव्य सुमन
"हे! शारदे माँ
अज्ञानता से हमें
तार दे माँ ..."

प्रवाह

प्रवाहमान है जीवन,
प्रवाह ही अस्तित्त्व है इसका।
भावनाओं की लहरों से भरा,
हमें सिखाता है हँसना–हँसाना,
जूझना, सहना और सहलाना!

– –

हम आशावान बनते हैं,
हम राहत पाते हैं,
सहारा बनते हैं।

– –

विचारों के बुलबुले
बनते हैं, फूटते हैं ,
परन्तु प्रभाव मिटता नहीं।
छाप उनकी बदल देती है
पल भर में हमें,
बदल जाती है हमारी पहचान।

– –

एक नया रूप
अस्तित्त्व में आता है,
हम मिलते हैं अपने आप से।
और पाते हैं एक नया परिचय!

– –

नयी प्रेरणा!
बदल देती है जो सब रुखापन
कोमलता और स्निग्धता प्रसरित होकर
जीवन को नया अर्थ देती है
और हम चल पड़ते हैं
साथ–साथ
एक साथ !
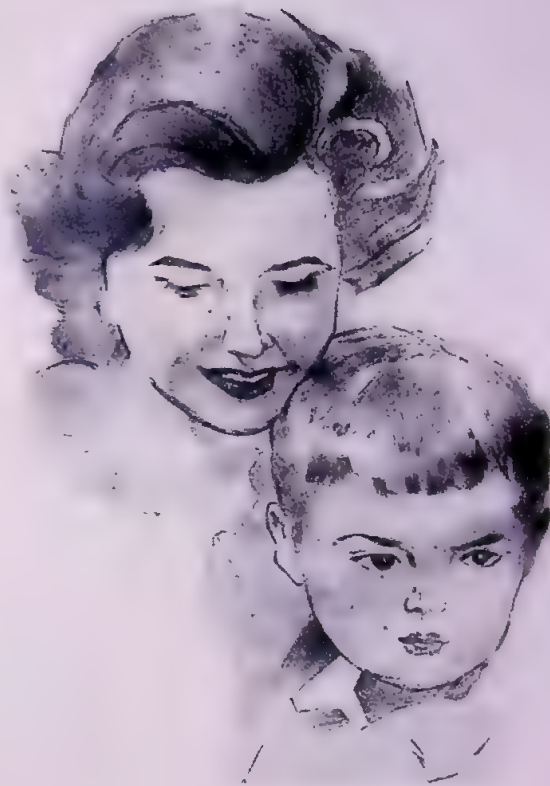
भाव अभावग्रस्त हैं...

अनुभूति अभिशिप्त है!
भाव अभावग्रस्त हैं,
मानवीय संवेदनाओं का
जल रहा है अलाव!
भयावह!
वीभत्स!
संधिकाल है यह कैसा?
मूल्य : अभिशिप्त!
अनावृत!
विकृत!
बदलते मापदंडों का
घेराव है यह कैसा ?
परिवर्तित
वर्त्तमान ...
प्रदूषित मानसिकता का
अप्रत्याशित परिवर्धन !
– विशेषता –
"दोगलापन "!
दोगलापन व्यक्तित्त्व का
दोगलापन अस्तित्त्व का;
स्वाभाविक है
इस दोगलेपन की
रीति–नीति में
प्रतिष्ठा के मायने बदलना।
कर्मभूमि !!! !!!
ना ...
मरुभूमि है अब ।
मानव दानव है ना !
इस मरुभूमि के
(अ) –सभ्य समाज में
(अ) –प्रतिष्ठित
(अ) –सज्जनों की तूती बोलती है।
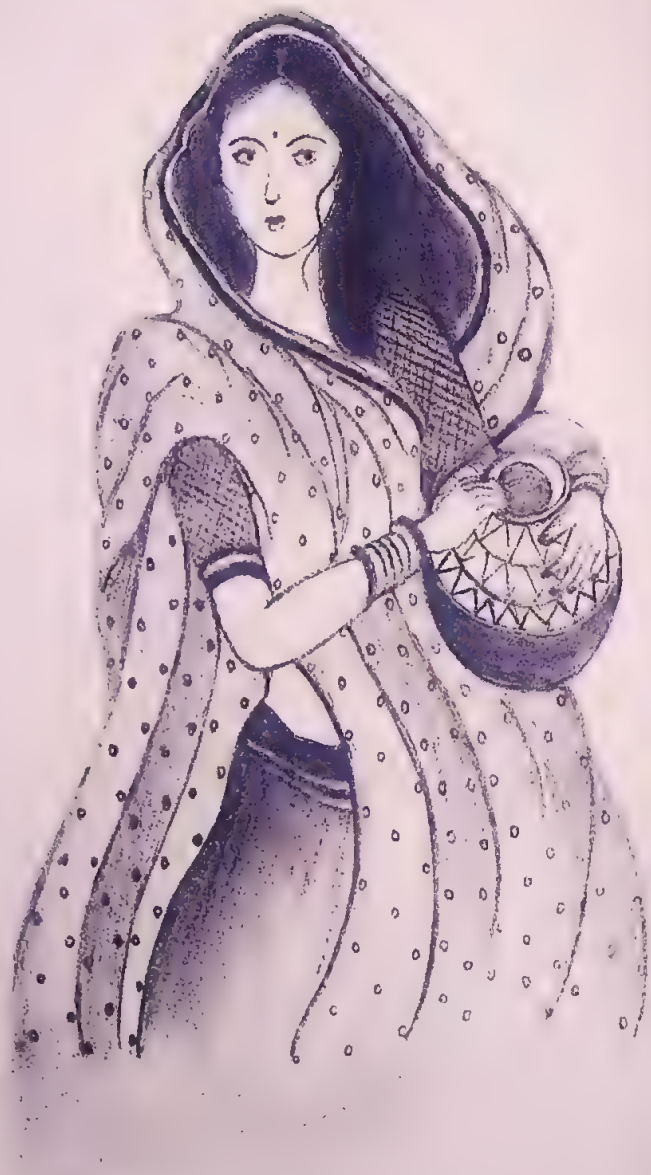
यहाँ बुलबुल का
अस्तित्त्व
मिटने को है
उसकी जीवनी–शक्ति की
रक्षा हेतु अलभ्य है
अमृत–जल।
लुप्त हो गये हैं
अजस्र जल–स्रोत
कोई मिथिलानरेश
होगा अवतरित
किसी दिन,
अपनी गुणवत्ता
एवं सदवृत्तियों की वर्षा कर
खोज लेगा वह दुर्लभ
'अमृत–कलश '
होगी प्रकट फिर से
'लक्ष्मी–स्वरूपा' 'जनकसुता',
मां धरती को
भारमुक्त करने
नरपिशाचों के
कुत्सित कृत्यों से! ...
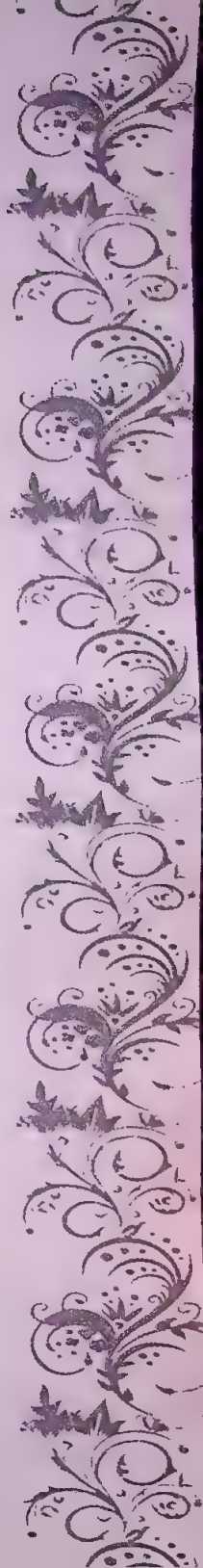
तान

निविड़ अंधकार में,
अपनी ही छाया अपरिचित थी।
अंधकार की इस कोख में,
पला अविश्वास, पली निराशा।
एक दिव्य स्पर्श अलौकिक मुस्कान
हाँ! निःशब्द की गूँज ने
आवरण हटा दिया।

पौ फटी!
प्रसरित है अनुपम आभा।
चुँधिया गये नयन पर अपलक रहे।
भेद पाया –
स्वाति नक्षत्र से गिरी बूँद के
मोती होने का,
रूखे तपते मरु में
उमड़ते जल–स्रोत का।

सलज्ज झुकी पलकें
जो उठती थीं
उलाहनों के लिए,
शब्द दारिद्रय है आज
तुम्हारी 'अनुकम्पा' कैसे कहूँ!

6-11-92

श्यामली, ओ श्यामली!

श्यामली, ओ श्यामली
मेघा घनी, पगना चली।
विद्युतमालायें सजीं
अंग–अंग में
लक्षकोटि दीपमालाओं की
झिलमिल संग ले
निकली ...
बदरिया श्यामली ...

विरह की अवधि का
अन्तिम छोर है
उग रही आकाश में
नव भोर है;
है विदा–बेला
बदरिया श्यामली
आज तेरे हर्ष की
सीमा नहीं ...

मृदंग की सी थाप
दे दे मचलती
पुलकन तेरे अंग–अंग में
विद्युत बनी ...
निकट आता जा रहा
अनमोल क्षण
है विलक्षण दृश्य यह
पावन मिलन का ...

श्यामली! ओ छद्मभेशी रूप यह
अद्भुत कहाँ से आज निखरा,
अगनित मुक्ताओं को
लड़ियों में पिरोकर
बन रही जयमाल
जलधि–नाथ की है ...
बावरी! ओ श्यामली!
तेरा समर्पण दिव्य है!!!
तेरा समर्पण दिव्य है!!!

कैदी

दोहरापन ही जीवन–दर्शन है
एक आत्म रूप व्यर्थ है!
होता सार्थक जो आत्मरूप
तो आज मेरा कैदी –
कैदी न होता, मेरा साथी होता!

सुविधाओं के पथ पर
उससे कदम से कदम मिलाती
प्रतिष्ठित होती!

क्या कहा?
स्वतन्त्र कर दूँ उसे!
लेकिन क्या अब ?
कहने से पहले सोच लिया करो,
उसके विकृत गले–सड़े रूप को
स्वीकारोगे क्या?

जानती हूँ नहीं!
इसीलिए तो कहती हूँ –
भाषा का मुलम्मा उतार दो,
जब मैं जान चुकी हूँ
तो छलते क्यों हो ?
मत भूलो हमारा परिचय हो चुका है!
दोनों का धरातल एक हो चुका है!

अब कैदी स्वतन्त्र नहीं होगा।
राज़ की बात है,
जरा कान लगाकर सुनो।
हर बार की तरह
आज फिर
बाहर आया वो
अपने ही प्रयास से।

हर बार की तरह
आकार बढ़ गया था उसका।
मैंने उसके अंग विक्षिप्त करके
भीतर धकेला है उसे फिर से
चाहने पर भी स्वतन्त्र न कर सकूं
चाबी को दूर
दसों दिशाओं से परे फैंक दिया है!

हाँ! परियों की कहानी का राजकुमार
ढूँढ सकता है चाबी को,
क्या ऐसा होने दोगे तुम ?
तुम्हें तो मृत्यु की ठंडक में
श्रद्धाँजलि का व्यवसाय ही भाता है
जो महानता का नित्य लाभ दिलाता है!

ജ്ജ

बंधु

बंधु! तू 'उसका'– होने लगा है।
स्नेह–सागर में समोने लगा है ।
न तूने, न मैंने
किसी ने न जाना,
वह अनजाना, अनदेखा
अद्भुत ठिकाना ।
अपने ही भीतर
आवाज़ देकर
स्वयं ही पुकारे
वो विश्वास देकर ।
स्नेह–जलकणों से भिगोने लगा है।
तू कुछ – कुछ स्नेहिल सा होने लगा है।

उड़ान

मेरे कटे पँखों को
सहलाते हैं जब उनके समर्थ हाथ,
छुअन करुणा भरी
मुक्त उड़ान की पीड़ा सोख पाती है क्या?

बढने लगते हैं पँख।
परिवर्तन नियम है प्रकृति का।
करुणा फिर पहले सी स्पर्धा ,
हाँ ! तिक्त विषाक्त धार वाली स्पर्धा।

विक्षिप्त होना तो नियति नहीं
बस भेद पाना होगा,
स्पन्दन का और मात्र मृग्या का।

पथिक अमर पथ का ...

बन्धन–मुक्त हो
चल पड़ा है
अमर–पथ का पथिक आज!
भूलोक के इस छोर से
अन्तिम विदा ले,
चेतना से भेदकर प्राचीर तम की
पा लिया उसने अमर–पथ!
सत्य के आलोक में
इस कर्मभूमि पर खड़ा था
महामनुज वह
निःशंक निर्भय !
बालमन की सहज निश्छलता
झलकती थी हंसी में,

काँप जाते थे धुरंधर
ओज वाणी में था ऐसा !
शिथिल है
आह ! विकल है
मन,
पावन स्नेह की निर्मल धारा
का स्रोत सूखा पड़ा,
शुभाशीष का वरदहस्त
पाने को तरस रहे हैं हम ।
यात्रा के इस पडाव पर
है विरला पथिक कोई
महामनुज सा !
लक्ष्य था परहित ही जिसका
निबल का संबल
सहायक हर किसी का।
हम भी पग–चिन्ह
चीन्ह पायें अमर–पथ के,
महामनुज के आचरण सा
आचरण हो।
सहजता, समरूपता
और सत्यनिष्ठा
से हो ज्योतित पथ
इस जीवन–यात्रा का !
ꙮꙮ

सहमा–सहमा पल

सहमे सहमे पलों में
सिमटकर रह गया है
मेरे चिन्तन का
अनन्त विस्तार ...
सुप्त हो गई है चेतना,
नीले स्वच्छ आकाश पर
विषाद की कालिमा घिर आई है।

चाँद खो गया है
रात्रि शेष है ...
तिमिर–खंडों में बँटा
मेरा अस्तित्त्व
चाँद–तारों से भरा नील गगन
खोज रहा है।

आकाश में उड़ते पँछी के
फड़फड़ाते पँखों का स्वर
पहुँचता है मेरे घरौंदे तक
और अपनी कल्पनाओं में
उन्मुक्त पँखों से
बादलों के पार
प्रकाश–पथ पर
भरने लगता हूँ मैं उड़ान।
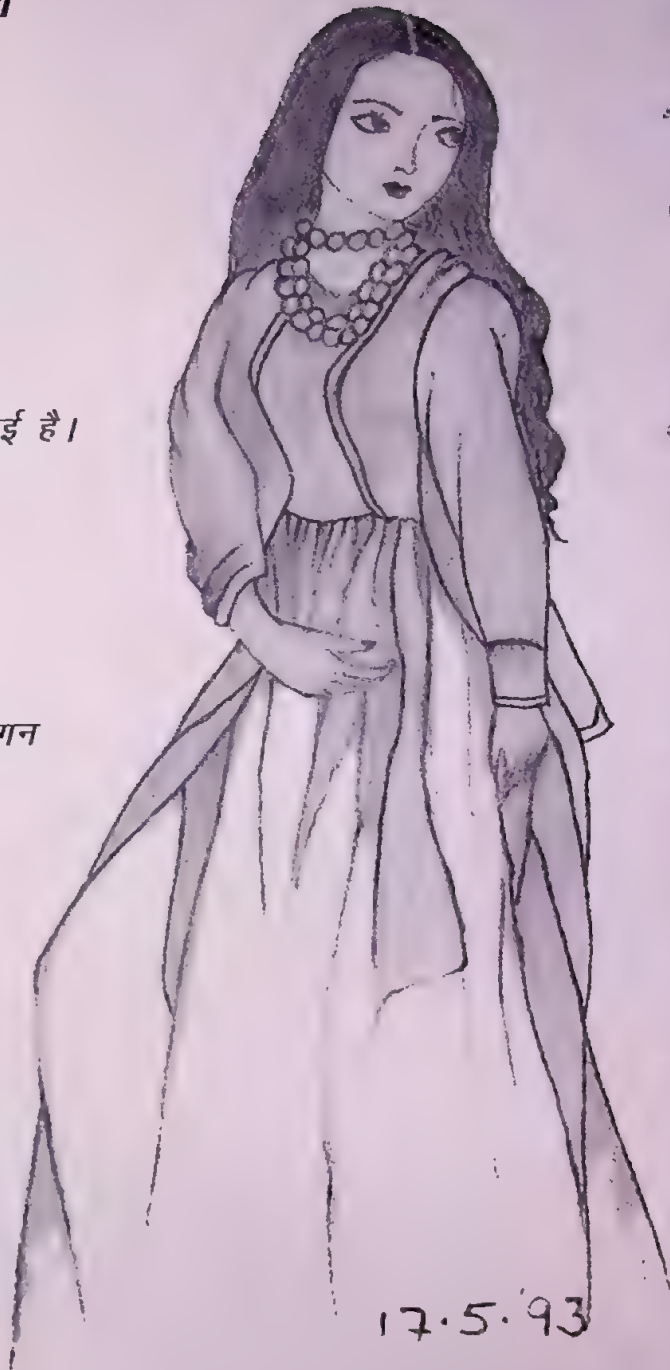
17·5·93

आह! बनता है, ढह जाता है
आशाओं का घरौंदा
पर हताश नहीं हूँ ...
कर रहा हूँ निरन्तर प्रयास
नन्ही चींटी की तरह
दीवार पर चढ़ जाऊँगा
कभी न कभी ...
चेतन मन का बंद द्वार
खुल जायेगा जब
तभी भेद पाऊँगा अदृश्य प्राचीर
पहुँच जाऊँगा अनन्त चेतन तक
'मैं ' –

खंड–खंड तिमिर
सहमा–सहमा पल ...

निर्मल

कुछ खास नहीं
बस आम हूँ मैं,
क्या दूँ मैं परिचय अपना!
गुरुदेव के चरणों में हूँ अर्पित,
बस यही है जीवन मेरा!

थी इच्छा तीव्र बालपन में
कुछ विद्यादान पा जाऊँ मैं,
गर्वित हूँ अपने जनक पर
किया पुत्र–तुल्य पालन उसने!

अवधि बीती
संयोग बना,
आया समय विदाई का!
अनजाने पथ पर कदम बढ़े,
उफान उठा फिर भावों का
वचन दिया पिता को वर ने
मेरी निज प्रगति का!

क्या खूब निभाया वचन को
मुझको भर–भर सम्मान मिला,
धन्य हुई बन सहधर्मिनी
समर्पण कर मैंने सहयोग दिया!

जीवन बदला
अब माता बनी
सतगुरु ने ओट शरण की दी
जुटा परिवार जन–सेवा में
यही मेरा सौभाग्य बना!

जीवन निर्झर यूँ बहता रहा
सरसता से भरता रहा,
सुख–दुःख के फूलों को चुनकर
मैंने सदा संतोष किया!

ढल गई दोपहर
अब वेला साँझ की आई है।
जरा–रोग से मन मुक्त हुआ
भय सारा मैंने है त्याग दिया!

अब सोच रही
साराँश है क्या,
मेरी इस जीवन–यात्रा का।
पाया उत्तर अंतर से ही
है अस्तित्व मेरा

'प्रेम' की परछाई का!
बस 'प्रेम' की परछाई का!!!

अस्तित्त्व की खोज

आशंकाओं के कटघरे में
मेरा अस्तित्त्व
खड़ा है डाँवाडोल सा ...
कितनी आँखें घूर रही हैं
इस साये से अस्तित्त्व को
मैं बुझा-बुझा उदास सा
खड़ा हूँ भीड़ में अकेला ...

अपनी सोचों में गुम
जानना चाहता हूँ
उस स्थिति को
जिसने मेरे अनचाहे
नन्हें से अस्तित्त्व को
निराधार आशंकाओं के
कटघरे में
ला खड़ा किया है।

है यह भीड़ भी अस्तित्त्वहीन
या है भेड़-चाल ?
लगे हैं सब एक दूजे के पीछे
जो करता है एक
करता है वही दूसरा
नकलची बंदरों की औलाद
आदम ज़ात ...

लगता है सभ्यता की
सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते
पाँव फिसल गया है
किन्तु बीच में से एकाध
अपने अस्तित्त्व की खोज में
छुपकर निकल गया है ...!

प्रेरणा

मेरी डायरी के पन्नों से
उभरा यह प्रश्न
एक दिन,
है कोई नारी जिसने
जिया है भयमुक्त जीवन ?

अबला कहते हैं जिसे सब
उसने बदली है
क्या अपनी पहचान कभी ?
अपने साम्र्थ्य से बनी
क्या कोई नारी महान कभी ?

पन्ने उलटती रही डायरी के
मिल जाये शायद
कोई उत्तर यहीं ...
पर कहीं नारी की पीड़ा थी
और दिखा तिरस्कार कहीं ।

आह! यह रेखाचित्र!
क्यों भूल गई मैं इसे!
मेरी डायरी से उभरे प्रश्न का
यही तो उत्तर है ...
कौन नहीं है परिचित इससे !

किया नेतृत्व मेरे राष्ट्र का
जिसने वर्षों तक,
आत्म–विश्वास से परिपूर्ण
जिसका था व्यक्तित्व ।

सुख की छाया थी शीतल
जो हर दुःखी के लिए
वीरता की थी प्रतिमा
जो हर दुःश्मन के लिए।
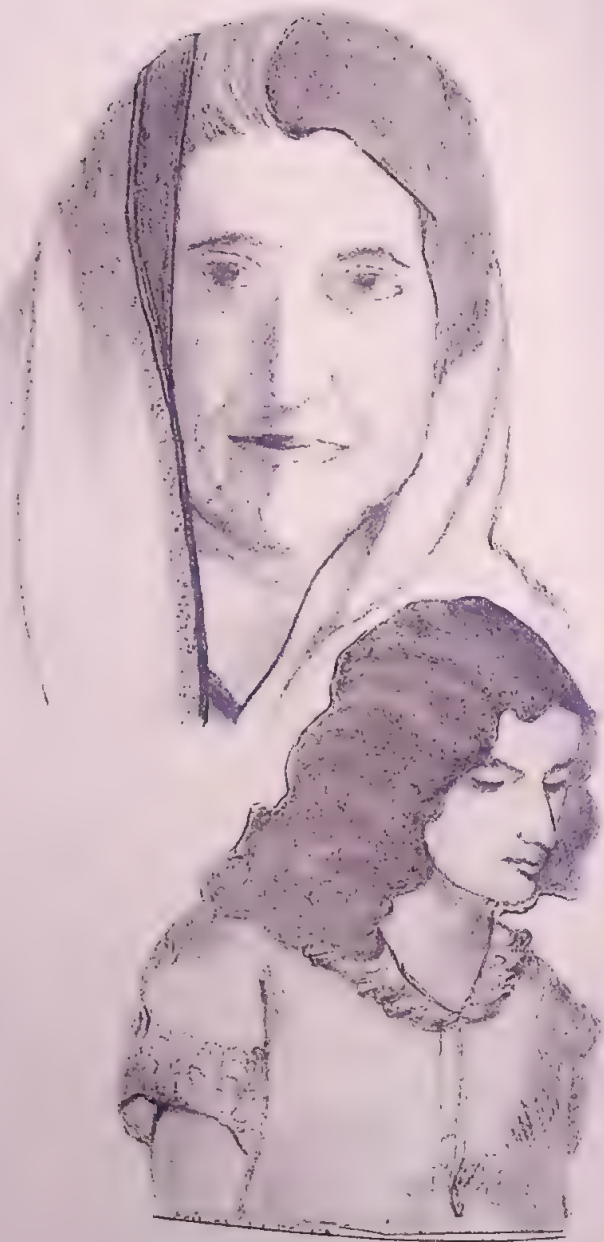
रक्त बहा एक दिन
वो बलिदान हुई,
एक और वीरबाला
राष्ट्र का मान हुई।

देश की मिट्टी का कण कण
तड़प उठा था उस दिन,
राष्ट्र की यह महान बेटी
हुई कुर्बान जिस दिन।

यही है वो नारी
भयमुक्त जीवन जिसने जिया,
'लाल जवाहर' और 'कमला' का
नाम रौशन किया।

बदल दी विश्व में
जिसने पहचान नारी की,
और अपने सामर्थ्य से
जो महान नारी बनी।

राष्ट्र के गौरव का बखान
जब भी कभी होगा कहीं,
चर्चा होगी ज़रूर
उसके इरादों की बुलंदी की।

कम न होगी कभी
चमक उसकी आभा की,
रहेगी प्रेरणा सदा
वो भारत की बेटियों की ।

जड़ें

जड़ों में रिसता है
जड़ों का ही कुछ ऐसा,
जो मेरी ख़ुराक नहीं।
जड़ों का कर्त्तव्य है
क्या बस जकड़े रखना?
विकसित करना नहीं?
हाँ इसीलिए है
कुछ ऐसी हवा –
कुछ ऐसा पानी
जो पेड़ नहीं ठूंठ बनाता है।
ठूंठ जो सरस नहीं
ठूंठ जो उत्पादक नहीं
वह तो परिचय के घेरे से परे
स्वयं ही लज्जित करता है
उन जड़ों को –
जो आधार नहीं बन्धन मात्र है,
उसे अभिशिप्त करने का साधन मात्र हैं।

नेपथ्य में

कटुता को
सिद्धाँतों की चाशनी में डुबो कर
मेरी पाचन–शक्ति बिगाड़ने वालो !
रसना का यह छल छोड दो!
एक बात पूछूँ?
पूछूँ या चीखूँ ?
चीखूँ?पर नहीं
जानती हूँ तुम उखडोगे नहीं,
तुम्हारे पास सभ्य मुस्कान का
सुरक्षाचक्र जो है!
अतः निवेदन है (विनम्र नहीं)
उतार दो मुखौटे को
बस एक पल के लिए;
मैंने नेपथ्य में तुम्हें
मंच पर आने से पहले
देख लिया है !!!

साँसों की टिकटिक ...

सागर की लहरों का
है कोई ठिकाना?
कहाँ से यह आई
कहाँ को है जाना!
दुनिया में ऐसा ही
अपना ठिकाना
कहाँ से हम आये
कहाँ को है जाना।

यह बेढब सा जीवन
यह बेढंगी चाल
बुराइयों से दुनिया
हुई मालामाल।
करें किससे शिकवा,
शिकायत, गिला,
कहें किसे जीवन का
यह फलसफ़ा।

अन्धेरे मे बैठे हैं
मस्ती भरे,
उजालों की न कोई
परवाह करे।
साँसों की टिकटिक
हुई बंद जब,
अन्धेरे से टूटेगा
सम्बन्ध तब ।

ळळ

परिचय

हम मिले थे बहुत पहले
अनजानी राह पर।
तुमने परिचय मांगा था।
मैंने दे ड़ाला।
तुम नहीं समझे,
सारी सरलता बह गई।

मन की ज़ुबान से,
बातें की तुमने नफ़ा–नुक्सान की,
मुझे स्वीकार न था;
सो परिचय न हुआ,
और एक युग बीत गया ।
फिर जब मिले
खुल चुका था तुम्हारे जीवन का
एक नया पन्ना ।
लाल अक्षरों में लिखे थे
तुम्हारे ये शब्द –
" मैं सामाजिक प्राणी हूँ!

नीति से भिन्न नहीं।"
मैं तब भी रही अनभिज्ञ,
तुम्हारे ही 'तुम' से!
रही मैं अपनी ही धुन में,
दुनिया थी मेरी कोमल कल्पनाओं की।
हाँ, तुम्हारी व्यवहारिकता ने
टोक दिया,
जतलाया प्रभुत्व अपना
और उसी दिन
तुम्हारा परिचय मिला!
उसी दिन
तुम्हारे शब्दों ने अभिव्यक्त किया
तुम्हारी प्रधानता को,
परिचय देकर तुमने
परिचय नहीं मांगा।
क्योंकि तुम परिचित थे
'देवयानी' से
शेष परिचय कैसा !!!

वितस्ता की बेटी

वितस्ता से उपजी एक नन्हीं लहर
समय के पँखों पर होकर सवार
व्याकुल थी उड़ने को ...
छू लेना चाहती थी –
नीले गगन का असीम विस्तार
हाँ ! नीले गगन का असीम विस्तार

कुमुदनियों के संग अठखेलियां करती थी
चंचल थी वह, बड़ी नटखट थी
तैरते हंसों को चिढ़ाती थी ...
बवंडर सी घूमती थी उनके आस–पास
यही था उसका प्यारा संसार
हाँ ! यही था उसका प्यारा संसार।

आकाश के अनन्त विस्तार तक
पहुँचने की चाहत बढ़ती ही गई
और एक दिन वह नन्हीं लहर, अपना रूप बदल
वाष्प–कणों में सिमट, उड़ चली आखिर –
बादलों के उस पार
हाँ! बादलों के उस पार।

विविध रूप रंगों की अद्भुत छटा है
नित नये आयामों की अनुपम प्रभा है,
आकाश गंगाओं के सेतु हैं,
शशिकिरणों के झूले हैं
चाँद–तारों की मालाओं से सुशोभित है
ज्ञान का यह अथाह भंडार
हाँ! ज्ञान का यह अथाह भंडार।

झिलमिल सितारों में खो गई
नये जगत के अद्भुत नज़ारों में खो गई
नन्हीं सी वह लहर ...
निःशब्द भाव प्रेषित हुआ
ज्ञान सागर से चुने मोती तो रूप बदल गया
निखरी वह पाकर ज्ञान का आधार
हाँ ! पाया यह उसने अनुपम उपहार।

वितस्ता की बेटी ने गौरव बढ़ाया
जो थी चाह उसकी वह करके दिखाया
वितस्ता की बेटी की ऐसी थी सूरत
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की थी मूरत।

कहाँ खो गई वह प्रेरणा हमारी
कैसे भुला दी उसने ममता यह सारी
सो गई कैसे जीवन की उमंग
बिखर गई कहाँ वह दिव्य तरंग!

विधाता ने कैसा रचा यह संसार ...
कोई देख पाया न इसके उस पार
कोई देख पाया न इसके उस पार ...!

तलाश

मैं खोजती हूँ बार–बार
पर न जाने क्यों, मिलता नहीं
मेरा खोया हुआ सा 'मैं'।
मैं क्या थी, क्या हूँ,
और क्या होऊँगी अभी?
नहीं जानती मैं !
पर उसे क्या कहूँ
छीन रहा है जो मुझको
'मुझसे ' ही !

कहने को विकास है यह,
परिपक्व हो रही हूँ ।
लेकिन कैसे भूलूँ –
इस परिपक्वता ने
छीना है मेरी सरलता को।
छीन ली है मुझसे
मेरी पहचान!

पाना है कुछ तो कुछ खोना पड़ेगा,
इससे मुझे इनकार कहाँ !
बस कोई मुझे इतना बता दे –
यह विकास है मेरा
या फिर बिछड़ रही हूँ मैं ख़ुद से?

क्या निर्णय करोगे तुम?
मुझे विश्वास है,
तुम न्याय न कर सकोगे
क्योंकि तुम भी – 'तुम' कहाँ!
हाँ तुम कुछ कहना नहीं चाहते
टूटता है इससे आत्मविश्वास तुम्हारा।
छुपोगे कब तक छद्म वेश में तुम?
मत भूलो
हम राही हैं एक ही पथ के
तलाश हमारी एक ही है!

ᏍᏍ

नीर बहाये पीर ...

नन्हें नन्हें नयन
कहाँ से भर लाते
सागर सा नीर !
पुलकित हो मन
तो भर आते ,
दु:ख में पूरा
साथ निभाते ।
भावों के सागर
की हलचल
लहर–लहर
विह्वल या चंचल
नयन सुभाषित
करते हर पल ।
नयन–नीर का
उद्गम कितना
कोमल और कितना अथाह
व्यथा–कथा और मर्मस्पर्शी,
भावों से जल बह निकला
नयनों की भाषा कोई विरला
मानस समझे धीर–गम्भीर।
नन्हें नन्हें नयन
कहाँ से भर लाते
सागर सा नीर।
हर लेते
जन–जन की पीर।

৩০৫০
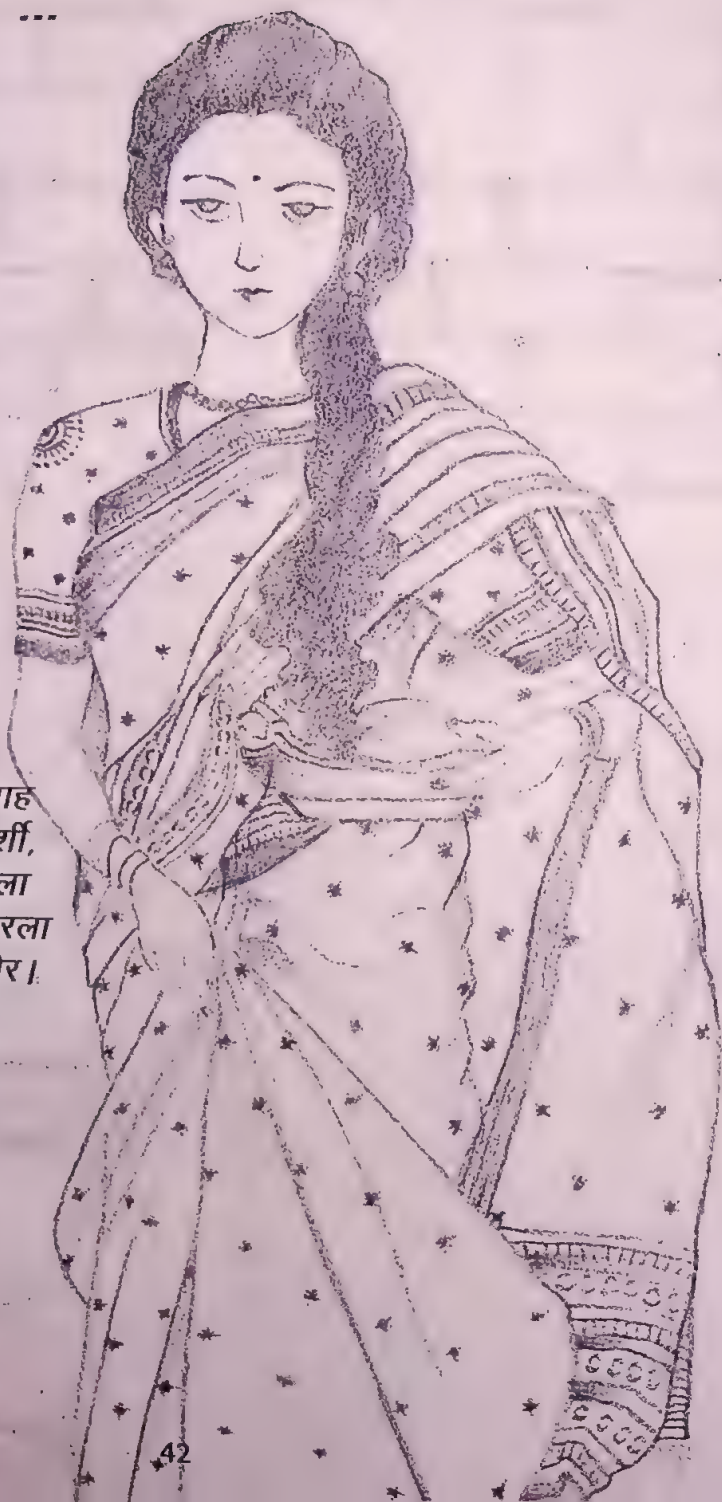
सूर्योदय

हाँ! मैं कहती हूँ
सूर्य डूबा नहीं !
अन्धकार की न पूछो,
यह तो दोष है दृष्टि का ।

जाने क्यों तुमने अपनी आँखों पर
काला चश्मा चढ़ा रखा है?
तुम्हें तो कोई ढ़ब नहीं सुहाता
किरणें अपना सुनहला आँचल पसारती हैं,
तुम चुँधिया जाते हो !
लेते हो सहारा काले चश्मे का
ठण्डक का यह कैसा मोह है ?
भूल जाते हो
काला चश्मा प्रकाश नहीं कालिमा
प्रेषित करता है ।

यह क्या ?
तुम तो काला चश्मा पहन कर
गर्दन भी झुकाते हो
अधखुली आँखों पर
काला परदा डाल कर
प्रकाश की खोज
हास्यास्पद है !

तुम आह भर कर कहते हो
डूब गया सूर्य
घोर अंधकार है शेष!
यह तो भ्रमण है प्रगकाशपुंज का।
अस्ताचल की लालिमा,
सूर्योदय की प्रेरणा है।
कैसी विडम्बना है
भोर की फूटती किरणें तुम नहीं देखते,
आँखों को कैद करते हो
लिहाफ़ में!
खिलती दोपहर को नहीं महसूसते।
काले चश्मे की दीवार खडी करते हो
और सांध्यवेला में
आँखे मूँद कर
एक ही आह में
झुठलाते हो वह सब
जिसकी तुम्हें पहचान नहीं ।

अनबूझे–रहस्य

मन के अज्ञात प्रदेश की
अन्तहीन गुह्य श्रृंखलाओं में
अनुभूतियों की
अगनित कन्दरायें हैं।
इन्ही कन्दराओं में
हाँ! इन्हीं कन्दराओं में
भरे पड़े हैं अनुबूझे रहस्य ..

रहस्य सृजन के
सृष्टि के कण–कण के
नवगठन के ....

काश! मिल जाये प्रवेश
इस अज्ञात प्रदेश में
तब अनुभूतियों के उज्जवल आलोक में
हट जायेंगे आवरण सारे
और रहस्य प्रकट हो जायेंगे ..
सुलझा देंगे जो हर उलझन को
हर लेंगे अन्तस के तम को ।

अनुत्तरित न रहेगा कोई प्रश्न
लायेगी नव सन्देश
हर उषा की प्रथम किरण ।
एक नन्हें से ओसकण में
कैसे समा जाता है
सूर्य महान!
नन्हीं तितली के कोमल पँखों में
कौन भर देता है
ऊँची उड़ान!

क्यों सम्भव नहीं है
मिलन रात–दिन का।
संगम है बादल कैसे
अग्नि और जल का।

कैसे बिन पँखों के ही
भर लेता है मन
कल्पनाओं की
अन्तहीन उड़ान।

अद्भुत है कैसा यह मेल, अमेल
बुद्धि की सीमा से परे का यह खेल।
ताप व्यथा का
जब असहनीय हो जाता है
सहलाता है आकर
कोई चुपके से अन्तस को,
ले जाता है
दुःख के सागर के उस पार
अगम–पथ को,
आलोक का
है जहाँ अनुपम प्रसार।
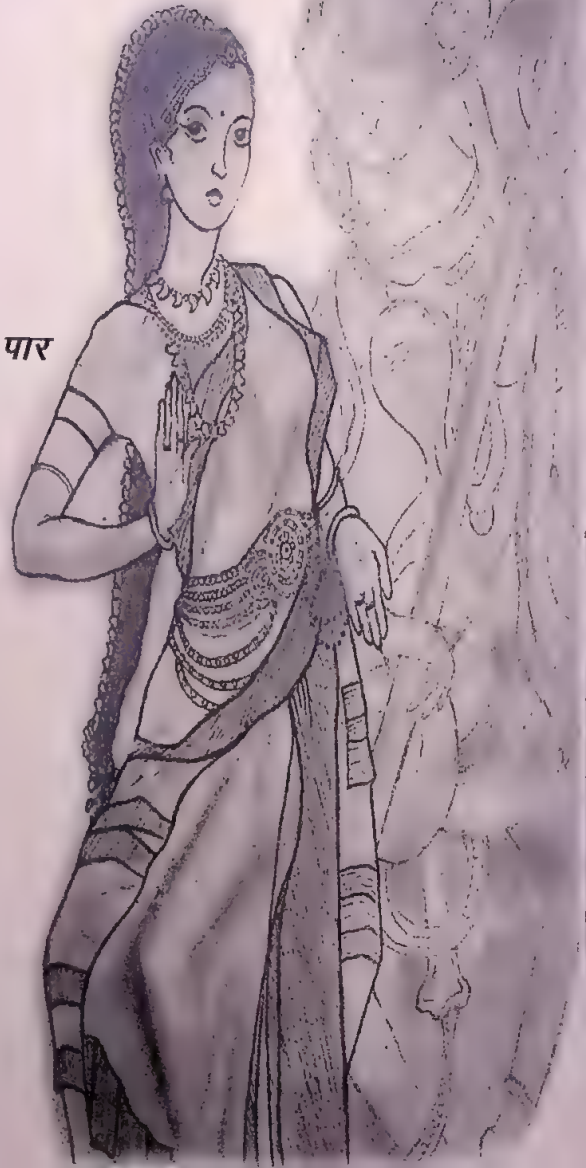
मक़बरों के शहर में

मक़बरों के शहर में
इक रात की यह बात है,
क्या रात थी वह!
चौदहवीं का चाँद
निकला आसमां में,
थी कशिश इक अजब सी
उसकी अदा में।
चाँदनी के शामियाने के तले, मैं
तारों की झिलमिल में निकला
आशियाँ से।

था इरादा आज देखूँगा
वह मंज़र,
जिसका करते थे बयाँ
दादा जी अक्सर।
चाँदनी में जगमगाता
ताज दिलकश !
इस ज़मीं पर प्रेम का
सरताज दिलकश!
ताज के आँगन में उतरा
आसमाँ से इक हिंडोला,
मैं खड़ा हैरान सा था,
कुछ समझ न पा रहा था,
था यह सपना या कि सच था!

पाक रूहें तैरती सी
गुज़रीं मेरे क़रीब से,
ओह! यह तो शाहजहाँ है
साथ में मुमताज की रूह !
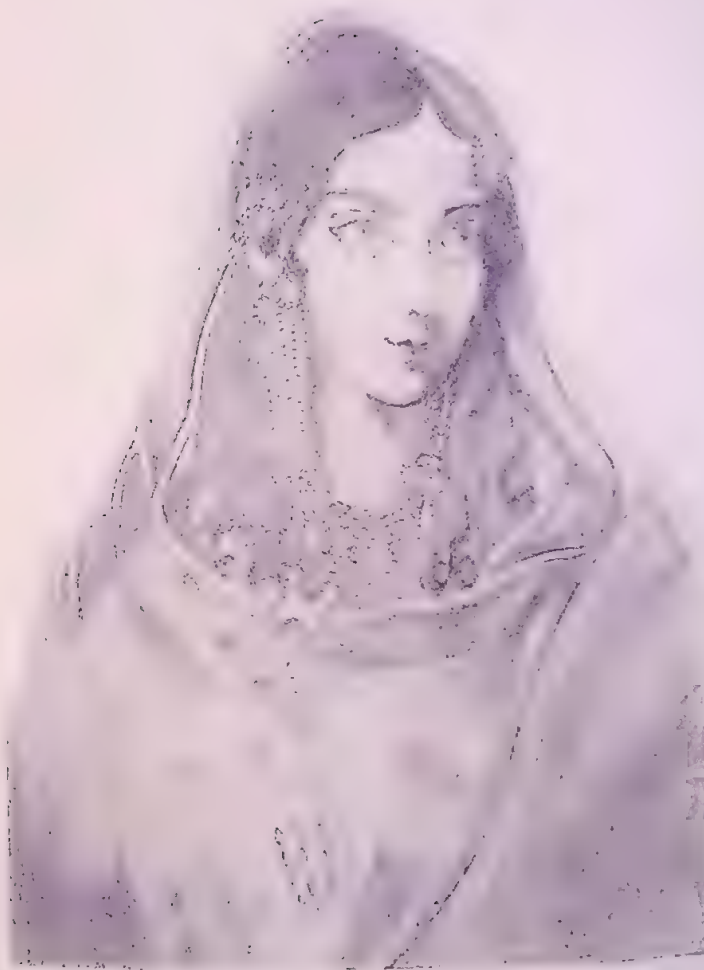
मुँद गई आँखें मेरी
मैं हो गया बेहोश सा,
हाँ! मैं लेकिन सुन रहा था -

ऐ मेरे सरताज देखो
हाल अपने ताज का,
प्रेम का प्रतिरूप है यह
हाँ हमारे प्रेम का!
चमक से जिसकी था हैरां
हर कोई जहान में,
कालिमा यह आई कैसे
आज उसके अंग में !

पाकीज़गी इसकी क्या यूँ ही
जोखिम उठाती जायेगी ?
चाँद की किरणें भी क्या
राहत न इसे दे पायेंगी ?

ऐ मेरी रूहे–मुकद्दस!
न इस कदर मायूस हो
आज भी सारे जहाँ में
ताज ही है इक मुजस्सम –
दास्ताने–इश्क का
उन दो दिलों के दर्द का,
बन गये जो आसमाँ में दो सितारे,
मौत भी जिनको न कर पाई जुदा।

ऐ मेरी मुमताज़ सुन
यमुना की लहरों की पुकार,
चाँद–तारों की सभा में
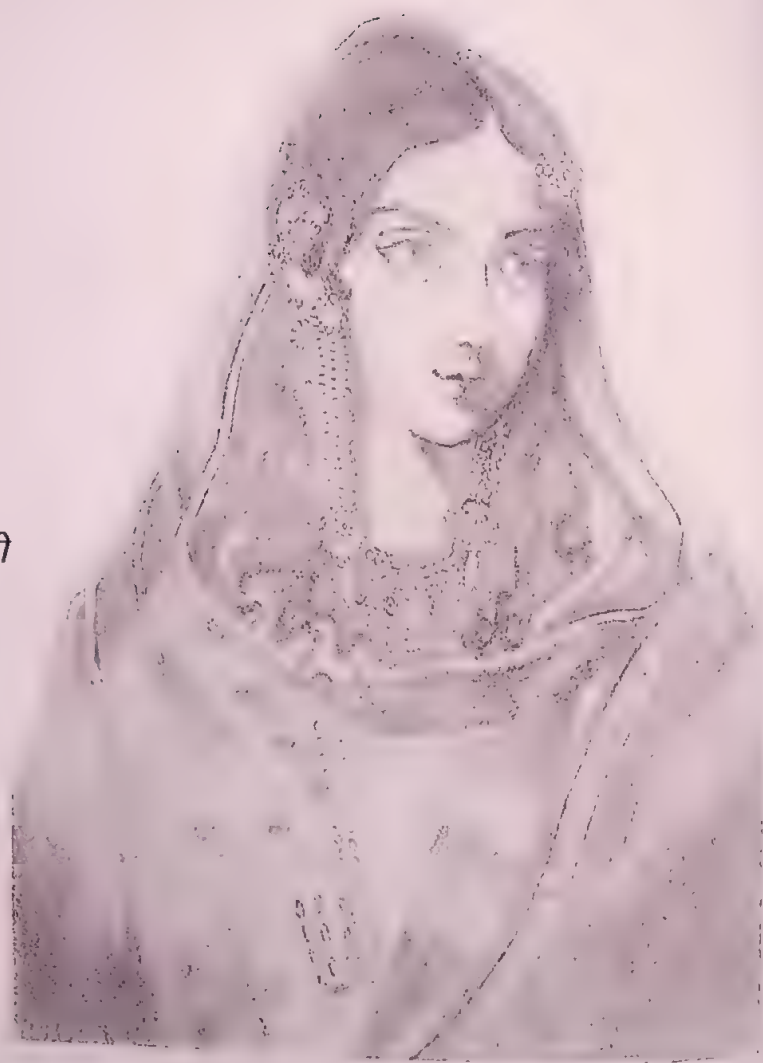
है हमारा इन्तज़ार ।
नाव अपने इश्क की
इस झिलमिलाती यमुना में
तिर रही है आज भी
पूरे जमालो–शान से।

आह! मेरे सरताज
पाया चैन मेरी रूह ने,
आज फिर मेरी मुहब्बत को
मिला रुतबा नया ।
ताज रहे या न रहे
यह दास्ताँ ज़िन्दा रहेगी,
पाक–मुहब्बत यह हमारी
इस जहाँ से न मिटेगी।

ऐ मेरी मुमताज़!
तेरी रूह की पाकीज़गी
इश्क की हद पार कर
इश्के–इलाही बन गई।
इश्क है इश्के–इलाही
इस जहाँ की नींव है यह,
ताज मिट सकता है लेकिन
इश्क मिट सकता नहीं।

वक्त ने करवट जो बदली
ताज भी ढह जायेगा,
पर ऐ मेरी रूहे–जाना
ख्वाब न यह मिट पायेगा।
बदलेंगी फिर सूरतें

इक नया दौर फिर आयेगा,
असल बस अहसास है
न कोई इसे झुठलायेगा ।

मुस्कुरा दीं पाक रूहें
फिर बड़ी तस्कीन से,
दो सितारों के मिलन का
यह खुशनुमा अहसास था।
ताज के आँगन में फिर से
छाप अपनी छोड़कर
उड़ चला अब आसमाँ को
यह हिंडोला इश्क का।

उनके आने की गवाही
ज़र्रा–ज़र्रा दे रहा था,
मैं भी कुछ–कुछ झूमता सा
ख्वाब से ज्यों जग रहा था।
आज जन्नत से ज़मीं पर
पहुँचा यह पैगाम है,
इश्क ही, बस इश्क ही
इन्सानियत का अंजाम है।

मकबरों के शहर में
इक रात की यह बात है !
क्या रात थी वह!
उफ़ ! वो कैसी रात थी !!!

लौ

लौ दिये की
सह रही है
प्रचण्ड हवा के तेज़ झोंके!
झिलमिलाती है,
थरथराती है,
बुझते–बुझते रह जाती है!
जानती है
हवा का यह प्रचंड वेग
नहीं रहेगा सदा,
झेल पाई इसको
तो प्रज्जवलित रहेगी सदा,
तेजोमय रहेगी स्वयं
और प्रसरित करेगी
आभा चारों ओर,
तम से भरे संसार में
स्नेह–दीप की यह नन्ही शिखा,
विश्वास के आलोक से
आशा–किरण बन जलती रहेगी!

लौ जो इसकी थरथराये
ओट देना हथेलियों की
टिमटिमाती जलती रहे यह
बुझ न पाये आस मन की !!!

आर–पार

गहराये अंधकार में,
भटकता एक क्षुद्र–कण!
ज्योति विहीन ! अस्तित्त्वहीन!
गति अस्थायी,
पवन के रेलों की !
आह! फिर वही भटकन अन्तहीन!
डूबना–उभरना नियति है,
नियति के पार क्यों सब दिशाहीन!
अनवरत 'स्व' से 'पर' का 'पर' से 'स्व' का
सान्निध्य और भेद
क्षुद्रता की, श्रेष्ठता की कैसी कड़ी है,
कौन जाने ?
कौन जाने! इस पार तिमिर
उस पार का सत्य कैसा ?
और आर–पार का संधि–स्थल कौन ?
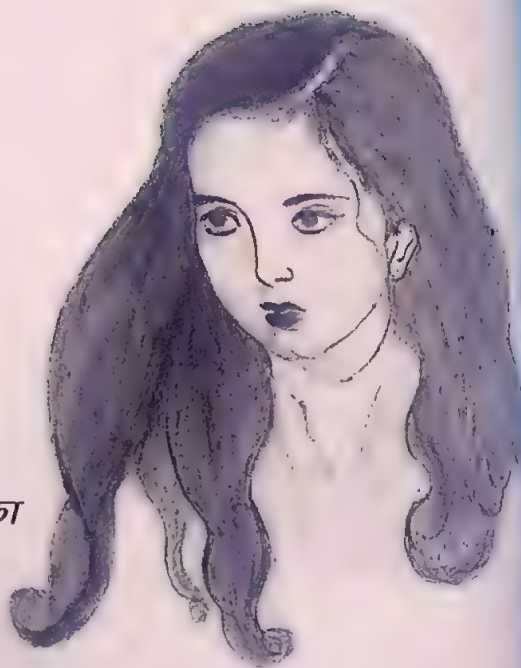
' मैं '

खंड़ – खंड़
हो गया है
' मैं '
कण–कण में
बिखर गई है
मेरी आत्मा।

' मैं ' की परिभाषा
कैसे मैं दे पाऊँगा,
'खंडित' अस्तित्त्व से
'पूर्ण ' व्यतित्त्व
भला कैसे हो पाऊँगा!

मेरे कदमों की आहट से
डर जाता है
' मैं '
मेरे शब्दों को सुनकर
मर जाता है
' मैं '

डर कर मर जाने से
पीड़ित है
' मैं '
फिर जी उठने की चाह में
जीवित है
' मैं '

जीने की चाह को
दृढ़ करना होगा,
खंड–खंड अस्तित्त्व को
संवरना होगा ।

ஐஐ

समय

'फुलसुंही' की फुसफुसाहट
हरसिंगार का झडना
निर्मल मदमाती पवन का झोंका
नयी स्फूर्ति भरा,
कह गया कानों में धीरे से
समय थमता नहीं!

यह बहती धारा
समेट लेती है सब
तीखे,मीठे,कसैले अनुभव!
शेष छोड़ देती है
एक मिठास भरी आस !

"भीगी भीगी स्नेहिल पलक
ममता की गरिमा से [illegible]
30-11-96

उसे थामे बढते हैं कदम
कदम जो कभी बोझिल
कभी पँखों से हल्के ;
कभी लड़खड़ाते ,
कभी गतिमान,
बढ़ते ही जाते हैं

और बनते जाते हैं मार्ग ।
मार्गों का जाल फैलता है,
फैलता ही जाता है
आह !
इसकी परिणति एक बिन्दु पर है
वह बिन्दु ही
लक्ष्य है,
जो बनाता है जीवन
और समाहित करता है उसे सहर्ष,
फूटती है धारा उसी से जीवन की
और हो जाती है उसी में विलीन,
प्रवाह यह कभी रुकता नहीं
हाँ समय कभी थमता नहीं !!!

अनन्त का कोई अन्त नहीं!

सतह पर मौन के सागर की
झूमती फेन सा।
नित बदलता रहता है संसार,
अन्चीन्हा अज्ञात !
होता है जन्म जहाँ
रहस्यमयी रात्रि से
एक और रहस्यमय प्रभात का।

अनन्त प्रभातों के
प्रकाश पुंज सा सूर्य
भर देता है प्रकाश से
एक साथ कई विशाल
विस्तृत क्षेत्र ।
और उधर जगमग करता जुगनू
अपनी ही चमक से गर्वित,
जान पाता न कभी
गगन के नज़ारों को।
चमकते सितारों को।
सूर्य की प्रभा को
पहचानेगा क्या?
अनन्त का कोई अन्त नहीं
जानेगा क्या ?

अपने ही तेज़ से ढकी
व्यथा दिवस की
झिलमिलाती है
रात को सितारों में,
तीव्र हो जाती है व्यथा जब
बिखर जाते हैं
पिघल कर कुछ तारे
आ जाते हैं धरा पर
आकाश से गिर कर ।

हर लेते हैं
व्यथा का अन्धकार
अपनी आभा से,
बिखर जाते हैं
जहाँ–तहाँ स्वर्णिम कण
स्वप्निल सी हो उठती है धरा
इनके आगमन से ...

घूम गया कालचक्र
हा !
लौट गये
फिर से गगन की ओर
आये थे जो दो सितारे
भू पर।
हम टिमटिमाते जुगनुओं को
अपने तेज़ का प्रसार देने!
दमक उठे वही स्वर्णिम आभा
खिल उठें सजीव हों
वे कण जिन्हें
सहेजा था, सँवारा था,
और बढ़ने की
दी थी प्रेरणा !
ओ मेरे पिता आचार्य!
बस आपने,
बस आपने,
बस आपने !!!

छुअन

स्नेह की छुअन से
आह्लादित तो होती है
किन्तु सकपकाती भी है,
सहज नहीं हो पाती ।

कुछ–कुछ आशंकित सी,
कुछ–कुछ भयभीत सी,
स्नेह की छुअन में
काँटों की चुभन सा
आभास उसे होता है।

मैं भावशून्य सा
भावों को स्थिरता का पाठ पढ़ा
मन की दहलीज पर अवाक् खड़ा
उसकी विवेकशील दृष्टि में
स्नेह को तराजू पर चढ़ा
देखता हूँ ...
पर समझ नहीं पाता
कि कौन सा पलड़ा भारी है –
स्नेह का
या
विवेक का?

आग्रह

तुम मेरी कल्पना के 'वो' क्यों नहीं होते,
जैसा मैं चाहूँ वैसे क्यों नहीं होते?
इच्छा मेरी सत्य के अनुरूप है
मिथ्या ही तो तेरा गरूर है।

कलाकार हूँ मैं
चौखटे में अपने
खुद को जड़ूं कैसे?
चित्र ढूंढता हूँ
अनुपम दिव्य हो जो,
हो मेरी आशा का जो रूप साकार।

समा जाओ इस फ्रेम में
मेरे लिए सबके लिए
आग्रह यह मेरा,
पल–पल की पुकार है।
खुद से ही खुद के!
सहयोग की गुहार है !!!

'मैं' क्या हूँ ...

आत्मसात कर पाऊँ
'स्व' की परिभाषा
खोज पाऊँ 'स्व' का मूल।
'मैं' क्या हूँ –
नहीं जानता
'स्वयं' को नहीं पहचानता।
भूल करता हूँ बार–बार
'मैं' को पता नहीं
क्या समझने लगता हूँ ....
'स्व' का भला कभी अपमान होता है
'स्वाभिमान' से क्या 'अभिमान' जुडा होता है!
कुछ असमंजस में जी रहा हूँ अभी
'स्व' का मूल खोज पाऊँ कभी
तो 'स्वाधीन' मैं हो जाऊँगा;
जान जाऊँगा अर्थ जीने का
विष को अमृत समझ कर पीने का।

ꙮ

भाव–धारा

काल की सीमाओं से परे
विशालता का विराट रूप
जीवन के हर रंग को
अपने में संजोये
हो जाता है साकार।

बँधन जाति, धर्म सम्प्रदाय के
बाँध नहीं सकते इसे!
जमा पूँजी है यह
भावों की !
जहाँ भाषा साधन मात्र है।
प्रकट हो उठता है
सत्यम् शिवम् सुन्दरम्!
हमारा परिचय,
हमारा मार्गदर्शन,
हमारी पीड़ा,
हमारा उल्लास,
सब कुछ रँग जाता है
एक ही रंग में
यही है मानव का विकास

सृष्टि के इस महासागर में
नित्य प्रवाहमान
इस 'प्राणगंगा' की
भाव–धारा ही
सेतु है
साकार और निराकार के बीच का...

पगडंडी

कभी यहाँ हरी दूब लहलहाती थी।
कोमल–कोमल मखमल सी,
मंद–मंद पवन के झकोलों पै
झूम–झूम कर इतराती थी।
नियति का आभास नहीं था इसे तब!

बहुत पीडा हुई थी जब
इस नन्हीं सी जान पर
हुआ था पहली बार
अन्चीन्हे कदमों का पहला प्रहार ...

निढ़ाल हो गई थी यह
सहा था जब पहला प्रहार ...
सिर उठाने का किया प्रयास फिर से
अनजान थी तब कि ठोकरों का यह
क्रम अनवरत चलता रहेगा
और इसके संभलने का हर प्रयास

बुरी तरह विफल हो जायेगा।
आज उस हरी दूब की
कहीं प्रतिच्छाया भी नहीं है,
कोई चिन्ह ही नहीं है
उसके वहां होने का ...

हाँ, एक मटमैले रंग की
लम्बी सी लकीर
दूर–दूर तक जाती है
और 'पगडंडी' कहलाती हैं–
'पग' रूपी डंडों से रौंदी गई है जो,
'हरी दूब' और अब 'नंगी ज़मीन'!

आवाहन

इस धरा पर
आज फिर
उतरे कोई
संदेशवाहक प्रेम का
संवेदना, सद्भाव हो
आधार उस अवतार का ।

प्रचंड अत्याचार की
हैं आंधियां चलती जहाँ,
माँ धरा के आँसुओं से
बाढ़ आ जाती वहाँ।
नारी के सम्मान की
क्या बात करते हो वहाँ,
दिन दिहाड़े बेटियों की
लाज खतरे में जहाँ !

इस धरा पर
आज फिर
जन्मे कोई
सुवीर रक्षक धर्म का,
पापियों का नाश ही
हो लक्ष्य उसके कर्म का।

दीमक लगी है आपसी
सद्‌भाव के आधार को,
खा गई किसकी नज़र
उस प्रेम की बयार को।
झील में खिलते कंवल
बारूद से मुरझा गये
गोलियों का शोर सुन
हैं पेड़ भी घबरा गये।
इस धरा पर
आज फिर
हो आगमन
शक्ति के महा–अवतार का
द्वेष के काँटे जला कर
बीज बोये प्यार का।

जननी अनजाये शिशु के
प्राण जब हरने लगे,
धन की खातिर एक माँ की
कोख तक बिकने लगे।
मानवता की इस तरह से
देख उड़ती धज्जियाँ
सृष्टि के कण–कण से निकलें
माँ धरा की सिसकियां!

इस धरा पर
आज फिर
साकार हो
उतरे कोई दिव्यात्मा
स्नेह की पावन फुहारों से
जो हर ले सब व्यथा।

लाँघ आया है तू कब से
सभ्यता की सीढ़ियाँ,
पर किधर को जा रही हैं
आज तेरी पीढ़ियाँ!
कर्म बिगड़ा, धर्म बिगड़ा
आस्था को घुन लगा
शेर वन से आ गये हैं
है शहर में हुड़दंग मचा।

इस धरा पर
आज फिर
हो जन्म
उस करतार का
काल हो जो पापियों का
दीन–दुखियों का सखा!
हाँ! दीन–दुखियों का सखा!

ഉഉ
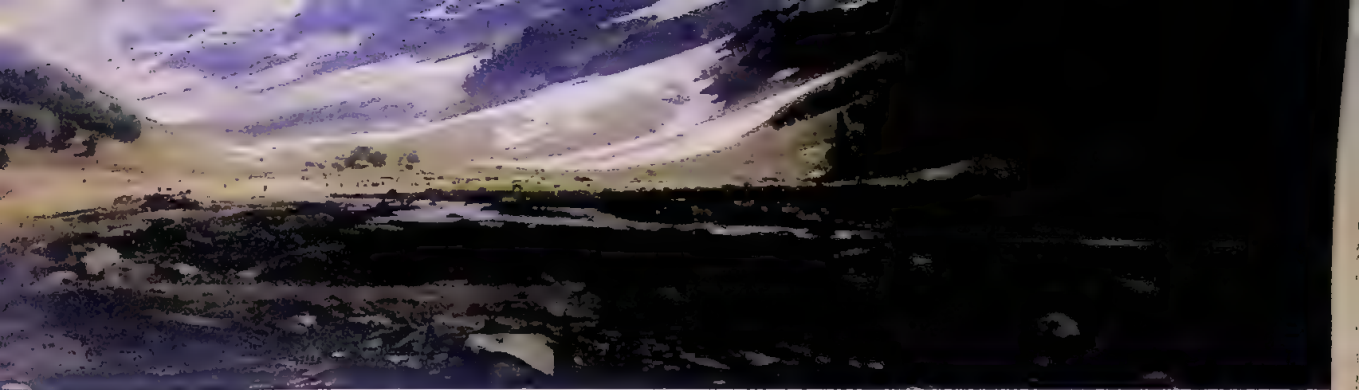
गंतव्य

आकाश से ऊंची थी
आकाँक्षायें मेरी !
हाँ! जब मैं किशोर था ।
कल्पनाओं के कल्पित चित्रों को
यथार्थ समझा था मैंने!

बूंद–बूंद टपकता है पानी
जैसे छिद्र वाली सुराही से,
यूँ ही क्षण बीते
बह गई सब कोमलता
मैं फिर साँस लेने लगा
यौवन की दहलीज पर।

कल्पनाओं ने पहना
उत्साह का पैरहन
लगा बस छू लूँ आकाश
है मेरे कितने पास !
मैं उड़ान भरने को था
पर ऊँचा हो गया आकाश।

यूँ दूरी बढ़ने लगी
और समय ने करवट ली,
यथार्थ के कंटीले धरातल से
टकरा कर मैं लहूलुहान हुआ ।
भूल गया उड़ान अपनी
भूल गया आकाँक्षायें सारी ।

तूफानी हवा ने पटक दिया
मुझे जाने कहाँ .....
खुली आँख तो पाया
कठोर धरती पर चित्त पड़ा हूँ मैं !
देखा अपने आस–पास
है कोई जो थाम ले हाथ !

छू गई मस्तक को
सुनहरी एक किरण,
और अंतर प्रकाश से
भर गया ।
नई भोर !
नया उत्साह !
हो लिया साथ फिर से।
एक बार फिर
शुरु हुआ सफर
कभी न रुकने के लिए
आतुर हो गया मैं
खुद ही खुद से मिलने के लिए ।

कहकहे

कहकहे
खोखली सभ्यता के
करते हैं मेरी कविता का उपहास
कि दुःखी हताश मन की उपज है यह ।
मैं उस व्यथा को कैसे भुला दूँ
लाखों मानस क्षण–क्षण झेलते हैं जिसे ।

मैं तुम्हारे साथ मिलकर कहकहे
नहीं लगा सकता
क्योंकि मेरा अंतस
खोखला नहीं है
मदिरा के प्यालों सा
या सिग्रेट के धुँए सा।

आंदोलित है अंतस मेरा
भूख से तड़पते मासूमों के
क्रन्दन से,
हारी आहत ममता के अपमान से,
तथाकथित सभ्य वहशी दरिंदों
के प्रति आक्रोश से;
बेचैन कर देती है मुझे
तुम्हारी सभ्यता के
बेढंगेपन की बेढंगी तस्वीर ...

मैं कैसे हंस सकता हूँ
तुम्हारे साथ ?
मैं 'खोखला' नहीं हूँ
परन्तु तुम्हारे 'खोखलेपन' से
बौखला गया हूँ,
तभी तो तुम्हारे समाज में
पैठ पाने की
'वुक्क़त' नहीं है मुझमें ।

तुम्हारे 'कहकहे'
मुबारिक हों तुम्हें
मैं खुश हूँ
अपनी 'आहों के समंदर' में ।

अमावस

दूधिया चाँदनी फैली है
मेरे आँगन में,
पर मन का आँगन
है कैद अमावस के घेरे में
न जाने कब से !

कभी यह चाँदनी
मेरे नन्हें से दिल पर
जादू सा कर देती थी,
कभी इस चाँदनी पर
अंकित किये थे मैंने
सुनहरे सपने !

न जाने क्यों
आज इस चाँदनी से
मन पर छाई
कालिमा नहीं धुल पाई ?

हाँ! मैं लाँघ आया हूँ
समय का वह सोपान
और मेरा मन
सतरंगी सपनों के आकाश से
बहुत नीचे उतर आया है।

समय के थपेड़ों से
होने लगा है आभास
यथार्थ का मुझे,
आ गया है
धरती–आकाश के मध्य
यह विशाल अंतराल ...

जो
अथाह है!
अलंघ्य है!
पहुँच से परे है!

अंततः मैंने ठान लिया
धरती के मानव को
मित्र अपना मान लिया।
ओह! भूल हुई कैसे मुझसे
सरक आया क्यों मै ऊपर से नीचे,
दिन के उजाले में भी
रात का अंधेरा क्यों है,
चेतना सुप्त है
जड़ता का बसेरा क्यों है?

फूट पड़ने को थी आतुर
कोमल भावनायें मेरी,
रौंदी गई कुछ ही क्षणों में
हिंसा घृणा प्रतिकार से,
सर्प की तरह फुंकारते हैं सब
और सफल होने पर
विद्रूप सी हंसी में
बिखर जाते हैं सब ।

कैसे हटेगी
अंतस में छायी यह कालिमा,
कब सूर्योदय होगा
खिल उठेगी भोर की लालिमा!
इस 'काजल की कोठरी' से
बेदाग ...
कैसे निकल पाऊँगा मैं?
हाँ! कैसे भोर की लालिमा
अंतस में भर पाऊँगा मैं ?

बादलों के पार

मेरा सूरज
मेरा चंदा
मेरे मन का संसार
बादलों के पार ।

पिघली काया
रह गया साया
रोम–रोम है निसार
बादलों के पार।

टूटे बंधन
नये स्पन्दन
नवजागृति का संचार
बादलों के पार।

'मैं' नहीं है
तू ही तू है
तू ही छाया आर–पार
खेल रहा है लुका–छिपी
छुप कर बैठा
है उस पार
बादलों क पार
ॐ

साँझ

साँझ ढली जीवन की बँधु
बीत गया दो दिन का मेला
खत्म हुआ मधुमास सुहाना
पास सरकती रात की बेला।

रिक्त पलों में गुज़रा जीवन
हो जाता प्रतिबिम्बित झट से,
कहाँ रहे, किस तरह रहे
छिपा नहीं कुछ मन दर्पण से।

उभर–उभर कर मिटते जाते
जीवन के रंग नये–पुराने,
साथ हमारा दो पल का था
फूट पड़ी अनबोली तानें।

विदा, विदा, प्रिय! विदा, विदा
छोड़ चले यह देश बेगाना,
अपनेपन की हद से ऊपर
शून्य गगन में छिपा खज़ाना ।

क्षणिकाएँ

क्षणिका –1

मृत्यु को ओढ़कर,
स्वयं को दफना कर,
जी उठने की आकाँक्षा,
क्या केवल मोह है?
मोह तो भंग हो चुका है,
आँखों के आगे अन्धेरा है,
अब प्रकाश कैसे हो ?

क्षणिका –2

एक हिंडोला मोम का
द्रवित होगा आँच से प्रेम की
या फिर दुःख के ताप से ।
और फिर वह द्रव्य
साँचे में ढलेगा एक दिन,
अश्रुकण रूप देंगे उसे एक अनुपम!
मोम तो बस मोम है ।

दोहे

कल करे सो आज कर, आज करे तो अब।
पल भर का तो साथ है, फिर बात करेगा कब।।

ईमेल – के मेल से, मेल हो गया खेल ।
बिना जान–पहचान के कैसी रेलमपेल ।।

बैठे काज न होयेगा, दुनिया है मोबाईल।
चलते–फिरते 'कॉल' करो, और दे दीजो इक 'स्माईल'।।

हाथों में 'रिमोट' है, कानों में 'हेडफोन'।
बेटा–बेटा माँ कहे, पर बात सुनेगा 'कौन'।।

हाथों से लिखना हुआ, गये समय की बात।
बटन दबाये खत लिखे, अब बबुआ हाथों–हाथ।।

बबुआ बसे विदेश में 'चैट' करें या 'टवीट'।
रिश्तों की संसार में घटती जाती प्रीत ।।

बिलख–बिलख मां रो पड़ी, बेटा चला विदेश।
तकती रहो मोबाईल को, माँ भेजूंगा सन्देश।।

बबुआ तेरे बोल दो, मेरे लिए विशेष ।
हाट बेगानी छोडं दे, वापिस आ जा देश ।।

खटिया पकड़ी बाप ने, अब दवा पिलाये कौन ।
कार्डों की बौछार है, 'गेट वेल डैडी सून'।।

राम–नाम की गूँज से, तब होती थी प्रभात ।
आज फोन की घंटियाँ, गूंज रहीं दिन–रात।।

नव–आलोक

घने बादलों से आच्छादित
नीलगगन था श्याम–वर्ण का
मध्यरात्रि घुप्प अन्धेरा
दुविधाओं ने मन को घेरा।
ऐसे में, मैं भटक रहा था,
वन में, वीथी खोज रहा था;
अन्चीन्हे, अनजान स्थल में
खडा आशंकित भयभीत मैं।

मूक निवेदन करता था मन
जाने किसको कहता था मन;
एक सितारा झिलमिल उभरा
मेघों के भीतर से चमका।
लघु–ज्योत वह दिव्य–रूप सी
मेरी पथ–प्रदर्शक सी वह;
मौन दिव्य आह्वान पाकर
बढ़ता चला मैं एक दिशा पर ।

दूर पर्वतों के पीछे से
कुछ–कुछ अलसायी सी उषा
धीरे–धीरे जाग रही थी
कमल सुनहले अंजुलि भर–भर
गगना से बिखेर रही थी।
बाहर–भीतर नव–आलोक का
दिव्य उजाला फैल रहा था,
मेरा मन भी दुविधा–तम से
हौले–हौले चेत रहा था ।

खण्ड दो
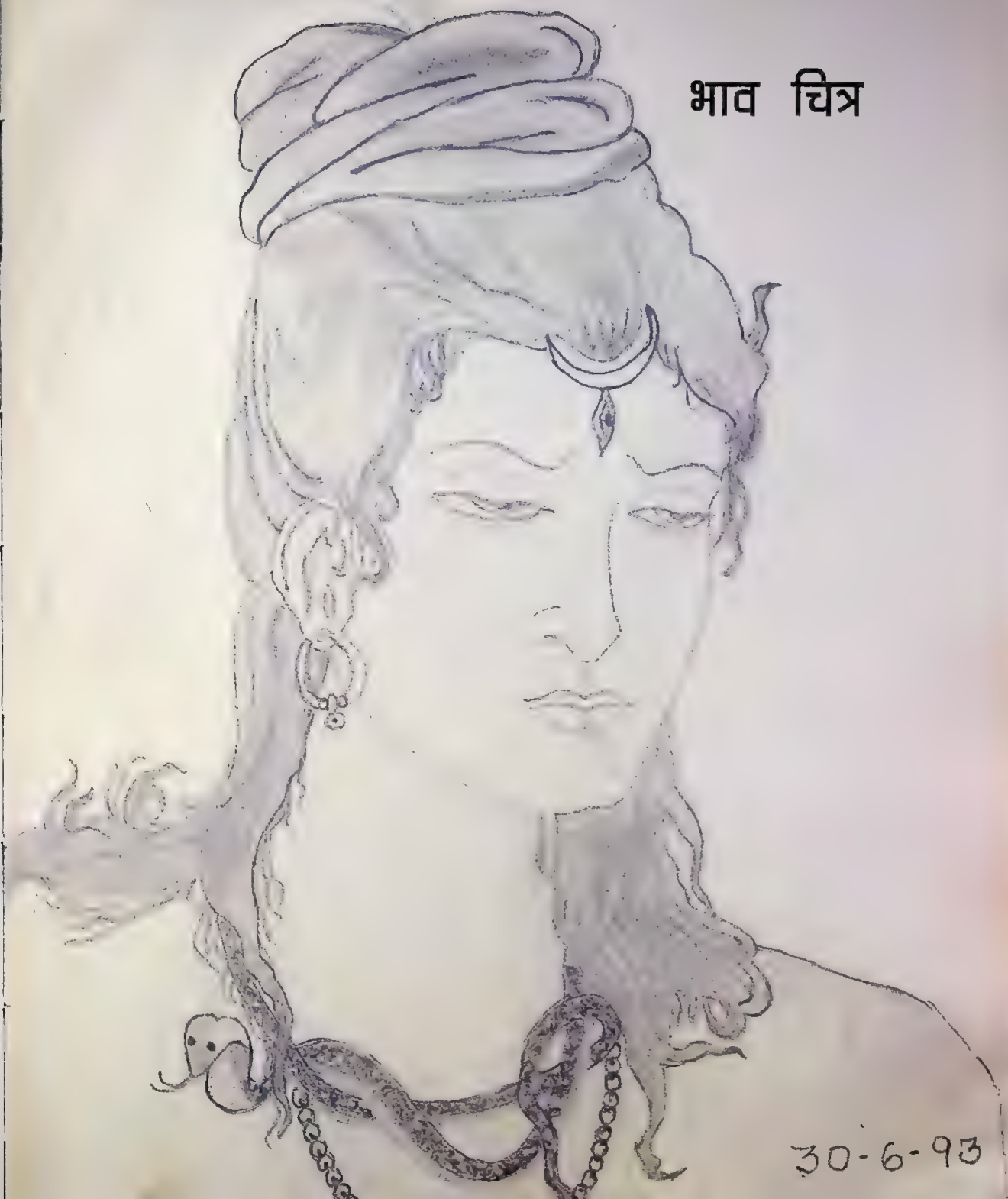
भाव चित्र
30-6-93

नेहनीर
नयन नीर से भरे भरे
अनुभूति का संताप लिए
मैं भीड़ भरे पथ से निकली
कोमल भावों के पुष्प लिए
नयनों में स्नेह - सागर भर
पग पग मिलन की आस लिए
मैं आ पहुँची हूँ पनघट पर
नेहनीर की प्यास लिए.....

५.११.९२.

तमसो मा ज्योतिर्गमय !!!
आस्था
आज बन्धुत्व के पुष्पों से
प्रीत-पराग
पल-पल झरता जाता रे...
सरस 'आस्था' के
निर्झर में
घुल-मिल जाता...
ओ बंधु !
अनुपम, विराट !
तेरी शरण...
तेरा आधार...
तेरे अक्षुण्ण-प्रवाह से
जीवन बहता जाता रे..
12·3·98

स्मृति-दिवस
मंगलमय
हो!!!

पथिक दिव्य राह का...

चाँदी भर भर अमृत-घट,
डोले चँदनियां,
आज धरा पर उतर रही
क्यों चन्द्र-दुल्हनियां...
"आशा औं विश्वास समेटे
दिव्य-राह का पथिक
खड़ा हो,
संतप्त-हृदय हो,
आकुल-दृष्टि
नयनों में नेह-नीर
भरा हो"
प्रभु-मिलन का
पंथ दुहेला,
सहज बना दूं;
अमृत-घट से
चाँदी बिखरा
पथ उजला दूं,
हो सचेत पग धरते धरते
विकट-राह पर !!!
ज्योतित हो मन,
पथ आलोकित !
चाँदी बिखर रही पथ तेरे.....
अमृत-घट की दिव्य-रश्मियां
कण्टक-मग में
संग चलें रे !

12.11.'98

17. 4. 95

नन्हे से साये का......

तपती रेती पर
उतराते साये
ढलती दुपहरी में...
नन्हें से साये का
अस्तित्व में आते ही
आरम्भ हो जाता है
पीड़ित संघर्ष !
निरन्तर बढ़ते हुए ताप से
जूझता निरीह सा
अस्तित्व
हर चुनौती को
मंद पड़ती लौ से
किंतु
क्षण क्षण डुलता पाते आत्मबल से
स्वीकार करता है
और अन्ततः
ताप का शौर्य बिखरने लगता है...
टूटते टूटते
सिमट जाता है
संतप्त रश्मियों का महाजाल
एक दमकते शून्य में !
क्षितिज के उस पार
आगमन होता है साये का
महा-उद्भव का
विलीन हो जाता है,
अपने ही उद्भव में
साये का नन्हा सा
अस्तित्व – पुनः
संघर्ष से जूझने की
क्षमता जुटाने ।

शुभागमन मंगलमय हो।

12-3-99

निर्जन-वन में निर्झर सी
बहती स्मृतियां !
स्मृति-पंथ पर आज अकेला
विचर रहा मन।
कण्टक-मग पर चलते-चलते
आँचल की छाया जो उठ गई।
सावन की शीतल बूंदें
अग्नि लपटों सी देह झुलस गई।
हृतल में नर्तन करते
थे पीले पत्ते।
बरसों मानस-तल पर
घन छाये न बरसे।
नन्ही कलिका मुर्झाई सी
कण्टक-वन में
विकल, विवश सी
निरख रही थी
दूरगगन में।
सहसा विद्युत
कौंध उठी,
श्यामल घन बरसे,
कण्टक छिटक गये,
वन सुष्मित, सुरभित सरसे,
कलिका सिहर उठी, सिमटी
विचरी वन-घन में
गगना की सुगंध सुवासित
थी कण-कण में।
***
हृतल में मानस-कंवलों
की आभा बिखरी,
स्मृति-पंथ भी आज
सहज, उजला-उजला है।

पागल मनुवा!

धीर धरे न पागल मनुवा!
हर आहट पर
विकल नयन
इक आस संजोए;
पहचानें पदचाप श्रवण
अनजाने में;
पल-पल आस छुड़ाये दामन,
सूना-सूना
मन का आँगन।
नयन कोर अब
भीग चले हैं,
नेह नीर छलका-छलका सा
आस निरास भई है बँधु!
धीर धरे न पागल मनुवा।

7.12.92

'स्व' की 9.8.95
लम्हा लम्हा बंटा समय
पल पल बीते
दिन, माह, बरस
सदियां सिमटी
युग
बीत गये ...
इक आस अधूरी
साथ रही
आहुति बने
जीवन कितने
'स्व' का स्वरूप
अदृश्य रहा ...
नयनों के पीछे
बंद द्वार
जहाँ नेह-निर्झर
कल-कल बहता
अपरिमित सुख की
वादी में,
सदियों से खोज
अधूरी है
'स्व' की 'स्व' ही
से दूरी है !!!
8.8.'95

मेरे बंधु...

बंधुत्व की अनुभूति से
खिंची आई हूं तुम्हारे पास..
प्रयास नहीं किया मैंने
कुछ अनायास ही हुआ...
तुम्हारे सौहार्द

तुम्हारी सौम्यता
तुम्हारे विवेक ने
बाँधा है मुझे!
कहने को नहीं कुछ शेष
जो है..
बस इतना है...
कि मैंने एक भावुक मन पाया है,
भावों की पावनता में जो बह आया है!

17.11.'92.

स्नेह - गीत

अदृश्य फुहारें
निश्छल नेह की
सुरभित कर
तन- रेणु कण-कण,
मन -प्राणों के
सूने उपवन में
बरसें...
बन भाव मनोहर !

स्नेह बने
जीवन का स्पन्दन
निश्वासों की गति
अनवरत
हो प्रवाहित
दिव्य स्मृति से !

उजला - उजला
मन आँगन हो,
भीगी -भीगी-
हो हर धड़कन
निर्मल-पावन
हो मनभावन
अमर -प्रीत यह...
स्नेह - गीत यह...

13 - 3 - 95
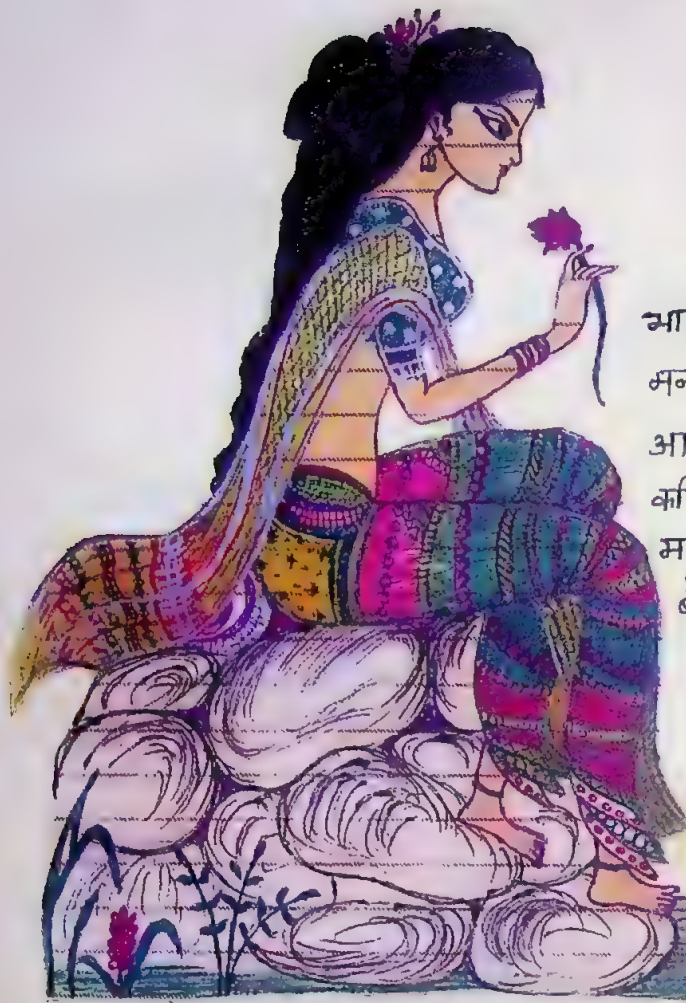
भाव-पुष्प

भावों के पुष्प बिखरे
मन-प्राण मेरे निखरे।
आभास हो रहा था
कलियां चटक रही हैं,
मरुभूमि में स्नेह की
बौछारें गिर रही हैं।

मेरा विवेक छलका
नयनों से नीर बन कर,
मोती समान झलका
भावों की सीप में गिर।
भावों के पुष्प महकें
मन-प्राण हों सुगंधित,
मरुभूमि भी हरी हो
हर दृष्टि स्नेह भरी हो।

१२.११.९२

बगिया

तितली के कोमल-पँखों को
देख बहुत ललचाता है मन।
मैं भी जाऊं
फूल-फूल पर,
खुशबू से
भर जाये यह मन।
नेह-नीर से
सींचू उपवन,
बना रहे
सुंदर आकर्षण।

काँटे दूर रहें
बगिया से,
भंवरे करें
गुंजार सदा।
मीठे-मीठे
बोल सुनाती,
कोयल कूके
यहां सदा।

मेरे प्यारो! आ जाओ
यह उपवन तुम्हें बुलाता है।
फूल हैं हम सब इक बगिया के
इसकी याद दिलाता है!

अभिनंदन

प्रीत पिरोये पुष्पों में
नयनों में स्नेह अपार लिये,
तू पंथ निहार रही किसका
भावों की मृदु पुकार लिये।

कण-कण को दे स्वर्णिम आभा
उषा का उज्जवल रूप अनूप,
तू उषा के उज्जवल मुख सी
नयनों में मुक्ता हार लिये
किसके अभिनंदन को आतुर
है द्वार खड़ी मनुहार लिये,
मन-उपवन से भावों के
पावन-पुष्पों की माल लिये।

स्मृति-दिवस मंगलमय हो... !

भाव धरा पर.....

आज स्नेह के सुखद ओसकण
झिलमिल बिखरे बन मुक्ताकण
भाव-धरा पर.
मानस-तल में कुसुमित
कुमुदिनियों का नर्तन...
देव! अर्घ्य बना मन-तन
स्वीकार करो तुम!
दिव्य-धाम के पथिक बना
उद्धार करो तुम!

अ.कि.
12.11.'97
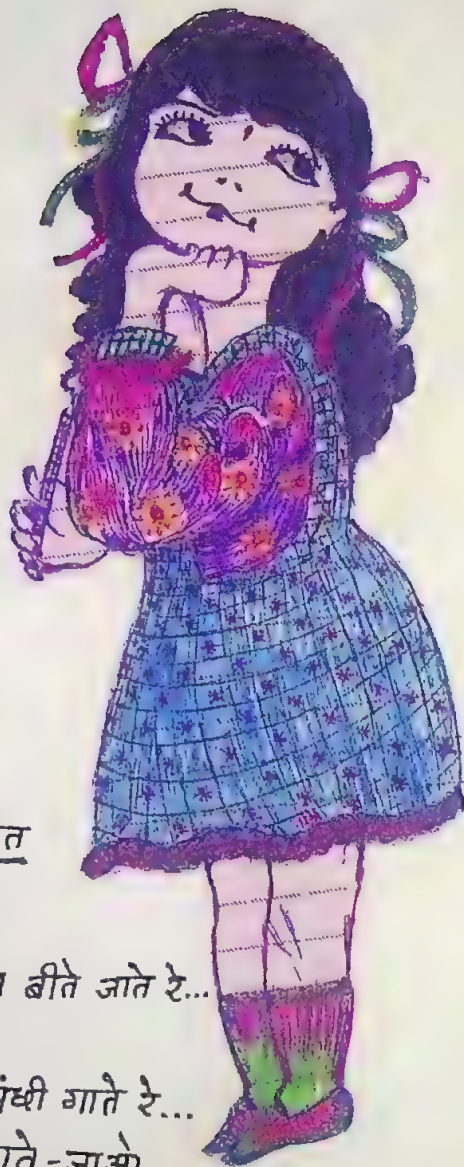
जीवन-गीत
खेल-खेल में
संग सहज पल बीते जाते रे...
भोर-सुहानी
नदिया-तीरे पंछी गाते रे...
गाते जाओ, गाते-जाओ
आनंद-गीत,
जीवन के अनमोल क्षणों का
अमर-गीत!
युग बीते -
यह जीवन-गीत सुनाते गाते रे...
खेल-खेल में
संग सहज पल बीते जाते रे...
12.11.2000

मन-पाँखी

मीत सुनहले पंख लिए
उड़ चला व्योम तक
मन-पाँखी।

धरा-व्योम का पाट बड़ा है,
नयनों में विश्वास भरा है,
हौले-हौले, धीरे-धीरे
आशाओं के पंख पसारे,
मीत स्नेहिल-गीत लिए
उड़ चला व्योम तक
मन-पाँखी.....

सिकता-कण

दहकती धूप में
असहनीय ताप से
चाँदी से झिलमिलाते
सिकता कण...
तट पर सरिता के ही
बिखरे पड़े हैं दूर-दूर तक
किंतु विवश हैं
ताप सहने को,
कैसे हो सकेंगें मुक्त
इस तप्त अभिशाप से ?
हवा और पानी के
मोहताज हैं बेचारे,
या तो हवा उड़ा कर
नदिया में डाल दे,
या मदमस्त लहरें
नदिया की
समेट लें इनको अपनी ओट में...
तभी हो पायेंगे मुक्त
प्रखर भानु के
उग्र ताप से
चाँदी से झिलमिलाते
ये नन्हें - नन्हें
सिक्ताकण !!!

प्रीत-पराग

"कुसुमित सुरभित प्रीत पिरोकर
गगना में फहरा देना तुम।
धरा-व्योम के कण-कण में
यह प्रीत-पराग बिखरा देना तुम।
सागर से मेरे आँगन तक
प्रीत-लहरियां बह निकलें।
पल-पल प्रीत स्थिर हो बंधु!
दिव्याशीष यह ले लेना तुम।"

7.4.'97

प्रश्न तुम्हारे.....

8.1.'93

तेरे नयनों में भरे
अनेकों प्रश्न
मैं भूल नहीं पाया हूँ, बँधु!
एक एक का उत्तर खोजने का
करूँगा प्रयास...
शायद खोज पाऊँ उत्तर
सभी प्रश्नों के;

आशा है
तुम्हारी जिज्ञासा और
मेरा प्रयास होंगे सार्थक,
हाँ! किंतु.....
कौन कह सकता है
कल क्या हो !!!

ओसकण

हर आहट पर
मेरे होने का आभास.....

आश्चर्य !
यथार्थ !
अभिलाषा !
आशा !
न
केवल स्नेह
केवल स्नेह
केवल स्नेह...
रोम-रोम में परिलक्षित हों
पावन स्नेह के ओसकण
कुसुमों से सुरभित
किसलय से कोमल
जीवन-बगिया को सौरभ से
भर दें
और संवार दें !
काँटों की चुभन से
धारा बन बरसें
नहला दें, सरस करें
हर लें संताप
स्नेह के ओसकण...
हाँ माँ ! यही है
मेरे होने का आभास...

यादों का आसमां...

अहसास...
पँख फैला कर
उड़ चले हैं यादों के आसमां पर,
यह आसमां चाँद-तारों से नहीं
तेरे अनेक प्रतिरूपों से भरा है।
तुम तक न सही, तुम्हारे प्रतिरूपों तक
पहुँच जाते हैं
मेरे कोमल-पँखी
अहसास!

13.1.'93

चंदा के पार

चलो चलें चंदा के पार।

चंदा चमक-दमक कर निकले
ले तारों की सेना,
घूम घूम कर
सबको देखें
अपनी चमक दिखे न,
हमसे भी अखियां हुई चार।
चलो चलें ....

बहते दरिया, नाले, नदियां
चलें समुद्र की ओर,
चंदा पूर्व-पश्चिम घूमें
नदिया, नाले, दरिया झूमें,
हम भी बांह पसारे निकले
चंदा अपने पास बुला ले,
चंदा दूर दूर से हंसते
कहते - 'आओ मेरे पास।'
कैसे पहुँचे चंदा पार
करते हैं कुछ सोच-विचार।
चलो चलें चंदा के पार।

4.11.92

स्नेहिल पल

पावन है, सुखमय है
तेरी स्मृति भी;
कुछ स्नेहिल पल भी
कितना ताप हर लेते हैं,
मानस शीतल रहता है
तेरे कोमल भावों की छाँव तले...

तू व्यथाओं के घेरे से
मुक्त हो विचरण करे
दिव्यानुभूति के
सुनहरे आकाश में
उन्मुक्त पाँखी सा!
ओ बंधु!.....
मेरी अभिलाषा है।
मेरा निवेदन है।.....

8·1·93

K.
29.3.95

ममता की पुकार...

आँचल का विस्तार
कहाँ तक ?
ममता की पुकार
जहाँ तक...
आकाशों की ऊँचाईयों में
स्नेह-पंख ले उड़ी
चिरैया
गिरती-पड़ती
उड़ती थकती
किंतु दृढ़ थी
अपनी धुन की
देख रही थी
उधर पंथ में
नयन बिछाये
अपलक, नीड़ से
नन्हीं चिरिया
भाव-विकलता
ढूंढ़ता स्नेह की
भाई 'उसको'
आ पहुँची नन्हीं चिरिया
के पास चिरैया
पाकर दिव्य-स्पर्श
पावन सा...
अनचीन्हा अनजान बना बैठा है भीतर
ममता की पुकार सुने हर एक निरन्तर ॥॥

" 'स्व' से शुभ्र
शाश्वत संगम...
हो विराट, अनुपम
उर-दर्शन...
मंगलमय हर सांझ-प्रभात हो
पल पल स्निग्ध-स्नेह-स्नात हो।"

12.3.'97

मन-वीणा के तार

किसी अदृश्य, अनजाने
स्पर्श से,
झंकृत हो चले हैं
सुप्त तार मन-वीणा
के...

न जाने किसने छेड़ा है
मन की सहमी सहमी
मौन वीणा को!
कौन गुनगुना रहा है
दिव्य जल-तरंग!
मैं सम्मोहित सी होने लगी हूं
इस दिव्य रागिनी के स्वर से।

ओ अपरिचित!
मुझे अपना परिचय तो दो!
आ जाओ इस पार...
भीगी पलकों के ओसकण
तुम्हारे अभिनंदन में
मोती बन ढुलक चले हैं।
भावों का सागर
ले रहा है हिलोरें...
यह दिव्य रागिनी बंद न करना!
मेरी धड़कन, मेरा श्वास है यह
तुम्हारी उपस्थिति का आभास है यह!

25.11.92

मेरे असीम !

सुरभित प्राण
सुवासित तन-मन
दिव्य-गंध हर ओर
धरा पर,
है आराधना का
दुर्लभ क्षण
दिव्य रूप में
हो साकार...

सागर-मंथन से
उपजा यह
कुमुद-कुसुम
दुर्लभ सुकुमार,
बना आज
मेरे असीम !
तेरी पूजा का
स्नेह-हार !!!

४.२.'९८

उमंग !
आकाशों की दिव्य गूँज से
मन-वीणा के तार हिल उठे,
श्याम-बदरिया बन भावों ने
नयनों से बरसात लगा दी...
ढलका आँचल भूली सुधबुध
पल सिमटे जब अवधि के,
सखी ! आज तरंग मन की
छूना मत !
क्षण मिले मृदु-जीवन के...
- - - - -
4.1.1993

पुकार...

बदला है समय,
बदल गई है सोच,
नित नये हैं अन्दाज़ सबके।
पर बदला है क्या मानव कभी?
बदली हैं क्या भावनाएँ उसकी?

वही दुःख है!
वही सुख है!
वही तड़प है, चाह वही।
खोजते हैं हम सब जिसको
है पुरानी राह वही!

भटक गये हैं राह से हम,
बड़ी दूर निकल आये हैं।
बाहर दहकता ताप है,
मन में भय, संताप है।

आओ सब मिलकर पुकारें,
अपने रक्षक की राह निहारें।
आयेगा फिर से,
वह उसी पुरानी राह से!
खुल जायेंगे द्वार,
अपने-आप कारावास के!

दूर होगा तम,
मिटेगा ताप उसके तेज से!
मुक्त कर लेगा सहज ही,
आसुरी संत्रास से!
हाँ आसुरी संत्रास से!

11-7-1993

जन्मस्थान : श्रीनगर – कश्मीर
शिक्षा : एम.ए०, एम–फिल०,पीएच–डी० (हिन्दी)
सम्प्रति : जम्मू कश्मीर राज्य के उच्च शिक्षा विभाग में गत तीन दशकों से कार्यरत।
वर्तमान में राजकीय महाविद्यालय कठुआ के हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर आसीन हैं।

जन्मस्थान : बसोहली – जम्मू
शिक्षा : एम.ए0, एम–फिल०,पीएच–डी०(अंग्रेज़ी)
सम्प्रति : जम्मू कश्मीर राज्य के उच्च शिक्षा विभाग में गत तीन दशकों से कार्य रत।
वर्तमान में राजकीय महाविद्यालय कठुआ के अंग्रेज़ी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर आसीन हैं।

रचनाकार द्वय, दो अलग–अलग क्षेत्रों से जुडे, दो अलग–अलग परिवारों में जन्में और पले–बड़े हैं, किन्तु उनके व्यवहार से प्रतीत होता है जैसे दोनों ने एक ही माँ की कोख से जन्म लिया है ।

व्यक्तित्व की सौम्यता, विचारों की परिपक्वता, स्पष्ट दृष्टिकोण और समाज के प्रति दोनों का दायित्व–बोध एक समान है। इनके कई आलोचनात्मक लेख तथा अन्य रचनाएँ जैसे कहानियाँ, संस्मरण आदि पत्र–पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। इसके अतिरिक्त अनुवाद एवं पुस्तक–संशोधन के कार्य के साथ वर्षों से जुड़ी हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'वन्य कुसुम' में इनके स्वनिर्मित चित्रों और काव्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। ये कवितायें साकार हो उठी हैं, भाव जैसे बोल पड़ें हों। यह इस पुस्तक का विशेष आकर्षण है और पाठकों के लिए भी यह अलग सा अनुभव होगा।

— प्रकाशक

Utpal Publications
207, IInd Floor, R-22, Khaneja Complex, Main Market, Shakarpur, Delhi-110092
Mob. : 9818447636 E-mail: utpalpublications@gmail.com

ISBN 81-85217-40-8

₹450/-